महादेवी-काव्य-परिशीलन

('आधुनिक कवि १' की व्याख्या सहित)

लेखक

भागीरथी दीक्षित, एम. ए. 'साहित्य-रत्न'

प्रकाशक

भगवतीप्रसाद सिंहानिया

जून १६५१

मूल्य

साढ़े तीन रुपया

'तेरी आभा का कण नभ को,
देता अगणित दीपक दान;
दिन को कनकराशि पहनाता,
विधु को चाँदी सा परिधान;'

अपनी बात

जिन इने गिने साहित्यकारों की कृतियों के अध्ययन द्वारा मैं, शूलों से बिंधे और पाषाणों से बोझिल, अपने जीवन के कुछ क्षणों को मधुर बना लेता हूँ, उनमें महादेवी का विशेष स्थान है। उनके उद्गारों से, मुझे अपने जीवन के मधुदिन में घुसे पतझर के अभिशापों के प्रति समझौते की भावना मिल पाती है और साथ ही साथ मेरी आध्यात्मिकता को गति भी प्राप्त होती है। अतः कृतज्ञता-प्रकाशन के निमित्त ही मैंने उनकी कृतियों का *'परिशीलन'* प्रस्तुत करने की धृष्टता की; अन्यथा कार्य की गुरुता, विघ्नों की निष्ठुरता तथा अपनी योग्यता की लघुता के प्रति पूर्ण जागरूक मेरा मस्तिष्क इस प्रयास पर स्वयं आश्चर्य कर रहा है।

जिसके भक्त पारिजात-सुमनों से उसकी पूजा कर रहे हों, घनसार की आरती में अपने संगीत का माधुर्य भर कर उसकी आराधना कर रहे हों, उस भारती के दिव्य मन्दिर के द्वार पर, तुलसी के कुछ दलों में बिखरे अपने अक्षतों को श्रद्धा से सरस बनाकर, पहुँचने वाले अकिञ्चन पुजारी, जो अपनी श्रद्धा के कारण अब लौटना भी नहीं चाहता, के समान यदि मैं, देहली पर ही खड़ा खड़ा, अपनी इस तुच्छ भेंट को प्रस्तुत करने में संकोच करूँ तो विस्मय की कोई बात न होगी।

अपने इस साहित्यिक जीवन के तुतले उपक्रम में समीक्षक होने का दम्भ भी तो मैं नहीं कर सकता, क्योंकि किसी कृति में व्यक्त भावों या विचारों का स्पष्ट उल्लेख अपने ढंग से कर देने में ही मैं आलोचना की इति-श्री नहीं मान पाता। मैंने महादेवी के गीतों में व्यंजित भावों और विचारों को समझने का एक निजी दृष्टिकोण मात्र प्रस्तुत किया है। विषय को प्रस्तुत करने का ढंग अपना है जो, मेरे इस दिशा में अनभ्यस्त होने के नाते, बेढंगा भी हो सकता है; किन्तु मेरा विश्वास है कि यह भी

विश्व-आलोचन का एक प्रकार है। ऐसा करने में मुझे, न तो कहीं अन्यत्र से उपादान उधार लेने पड़े और न 'वादों' या 'साम्प्रदायिकता की भावनाओं' से रंग लेने की आवश्यकता ही प्रतीत हुई। परिणामतः इस पुस्तक में अन्य आलोचना ग्रन्थों की भाँति भिन्न भिन्न प्रकार के सिद्धान्त-वाक्यों का लम्बा चौड़ा उद्धरण न मिलेगा और नाड़ी परख-तुलाओं की भरमार। इन तथा ऐसे ही अन्य कारणों से, भले ही मेरा यह प्रयास समीक्षा-लोक में न घुस पाये; किन्तु, यदि इसके द्वारा महादेवी के गीतों को समझने में उन सहृदय जिज्ञासुओं को, जो कार्य भार से अथवा पथ-निर्देश के अभाव में उनका रसास्वादन नहीं कर पाते, कुछ भी सहायता प्राप्त हो सकी तो मैं सन्तोष की साँस ले सकूँगा।

कवयित्री की चिन्तन-धारा और अनुभूतियों को स्पष्ट कर लेने के बाद मैंने, पाठकों की कुछ और सुविधा के लिए, 'आधुनिक कवि १' में संगृहीत गीतों के भावों की ओर संकेत भी प्रस्तुत किया है। रहस्यवादी कवि की सामान्य समीक्षा से गुरुतर कार्य है उसके उद्‌गारों का सरल अनुवाद करना, क्योंकि उसकी अलौकिक एवं सूक्ष्म भावानुभूतियों को रंगहीन पदों में बाँधना असम्भव-सा हो जाता है। फिर भी, मैं प्रति गीत का भाव लिखते समय इतना सजग अवश्य था कि उसके किसी भी अंश में व्यक्त भाव या विचार उपेक्षित न रह जायँ; भले ही प्रति शब्द का अर्थ, पूरे गीत का काव्य-सौष्ठव तथा कल्पना की दूर तक व्याख्या न हो सकी, क्योंकि अपने वर्तमान जीवन के व्यस्त क्षणों में इतना व्यापक प्रयास मैं नहीं कर सकता था और अनुक्षण मुझे अभिशापों की छाया बढ़ती हुई प्रतीत होती है जिसके कारण इस कार्य की पूर्ति में अधिक समय लगाना मुझे अच्छा न जँचा। किन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि कोई इन संकेतों के सहारे अपने मस्तिष्क को इस दिशा में गतिशील रखेगा तो उसे रहस्यवाद के इस नीहार-लोक में

गन्तव्य मार्ग मिलता जायगा। हाँ बाद में यदि आवश्यकता प्रतीत हुई और मुझे अवकाश मिल सका तो मैं इन गीतों की व्याख्या को परिवर्द्धित रूप दे सकूँगा।

इस विषय में एक बात और; इन गीतों में अभिव्यंजित भावों की ओर मैंने जो संकेत प्रस्तुत किया है, उनमें से कुछ के प्रति किसी को आपत्ति हो सकती है; किन्तु मत-वैभिन्य मात्र किसी एक मत की असत्यता सिद्ध करने का ठोस प्रमाण नहीं हो सकता, ऐसा अपना विश्वास है।

प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप से जिन महानुभावों के विचारों के द्वारा मुझे इस कार्य में कुछ भी सहायता मिल सकी है, उनका मैं चिर आभारी हूँ। 'प्रकाशक', जिनके उत्साह और सहयोग के कारण मेरे विचारों को पुस्तक का रूप मिल सका, के प्रति भी मैं अपने हृदय को कृतज्ञ पाता हूँ। वे सभी महानुभाव जिन्होंने समय समय पर मेरी बातों को सुनने और अपने अमूल्य विचारों से मेरी कठिनाइयों को दूर करने का अनुग्रह किये हैं, धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में अपनी त्रुटियों की क्षमा-याचना करते हुए मैं, इस आशा के साथ कि 'छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई', अपनी यह पुस्तक सहृदय पाठकों को समर्पित कर रहा हूँ।

बम्बई
ज्येष्ठ पूर्णिमा २००८

भागीरथी दीक्षित

'प्रकाशक की ओर से'

'महादेवी-काव्य-परिशीलन' *'साहित्य-सर्जना'* का प्रथम प्रकाशन है। श्रीमती *महादेवी वर्मा* की गहन नैष्ठिक दार्शनिकता का विश्लेषण प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। श्रद्धेय *श्री दीक्षित जी* की इस *कृति* के विषय में कुछ भी कहना मेरी धृष्टता-मात्र होगी। यह भार मैं उन कृपालु पाठकों पर छोड़ देना चाहता हूँ जो श्रीमती वर्मा के रहस्य-वाद में जीवन के सामंजस्य का दर्शन करके कला के उपयोगी रूप का साक्षात्कार चाहते हैं।

पुस्तक के प्रकाशन में अनेक असुविधाओं के कारण यत्र-तत्र अशु-द्धियाँ अवश्य रह गई हैं। मेरा प्रथम अनुभव, पाण्डुलिपि से प्रतिलिपि करने में असावधानी, मुद्रणालय के प्रूफ दोष आदि, उक्त त्रुटि के कारण हो सकते हैं। इस प्रकार की अशुद्धियों के लिए पुस्तक के अन्तिम पृष्ठ पर शुद्धि-पत्रक दिया गया है। मेरा विश्वास है कि आगामी संस्करण इस प्रकार के दोष से मुक्त होगा।

आलेखन-कला के आचार्य गुरुदेव श्री *रामरत्नदास जी 'तरुण'* ने पुस्तक के मुखपृष्ठ को सजाने के लिए अपना अमूल्य सहयोग देने की सहज दयालुता दिखाई है। शततः आभार मानने पर भी उनके ऋण से उऋण होना मेरे लिए सरल नहीं।

'साहित्य-सर्जना' का द्वितीय प्रकाशन भी यथासम्भव शीघ्र किया जायगा। *'सर्जना'* के प्रकाशन में मार्ग-प्रदर्शन करने वाले कृपालु महानु-भावों का मैं विशेष आभारी हूँगा।

१७ कॉवेल क्रासलेन
बंबई, २. २१ जून १९५१

विनीत
भगवतीप्रसाद

उपक्रमणिका

१ कवयित्री की दुःखानुभूति

मर्मर की मौन वेदना में वसन्त के उन्माद से मुखरित, निदाघ के तप्त उच्छ्वासों को वर्षा के आँसुओं से गीला बनाता हुआ, शरद के मलय-शीतल स्पर्श में हिम-जड़ता भरने वाले शिशिर के आलिंगन में बेसुध, अपने अनन्त वैभव को प्रतिक्षण बनाता-बिगाड़ता, विस्मय में सना हुआ यह संसार फिर भी इतना मोहक है कि उसके शून्य में जल-कणों की मायावी छवि शिखी-प्राण को बारम्बार हँसा-हँसा कर रुला देती है और उसका भोलापन उसे पुनः उसी छवि-दर्शन की मदिर-लालसा में बाँधे रखता है। मानव, विश्व के असीम सौन्दर्य और अनन्त वैभव की अभिव्यक्ति करता हुआ भी, निरुपाय है—'हास-अश्रु' में ही उसके करुण इतिहास की स्थिति है। जीवन के इसी रहस्य को समझ कर, हमारे सत्य-द्रष्टाओं ने संसार को दुःखमय घोषित करते हुये उसकी यातनाओं से मुक्ति पाने के कई महत्वपूर्ण प्रयत्नों की

ओर संकेत किया। तबसे आज तक संसार के दुःखमय होने का अनुभव मानव को होता चला आ रहा है और विश्वास है कि आगे भी निरन्तर होता रहेगा। इसी दुःख की मार्मिक व्यथा एवं करुण अनुभूति से क्षुब्ध हो कर सांसारिकता की प्रबल आसक्ति में बुरी तरह फँसे हुये मानव की चिर-मुक्ति के लिये सिद्धार्थ ने राज-वैभव को लात मारा और जर्जरित मानवता को निर्वाण के दिव्य पथ पर आगे बढ़ाया। भारतीय दर्शन ग्रन्थों ने विश्व की निस्सारता पर प्रकाश डाला है जिसकी दिव्यता के बारे में प्रश्न उठता ही नहीं।

दार्शनिक-चिन्तन की इस धारा का रहस्यपूर्ण प्रवाह साहित्य में भी हुआ, किन्तु वह अपनी रहस्यात्मकता में आर्द्र और शीतल हो उठा। दर्शन के बौद्धिक चिन्तन को हृदय मिला—उसके नीरस तर्क-जाल को आँसुओं से तर किया गया। इसमें सन्देह नहीं कि साहित्य में आने पर यह धारा भिन्न वर्णी हुयी, किन्तु इतना स्पष्ट है कि दुःखवाद की दार्शनिक निर्झरिणी के करुण सीकरों से साहित्य सदैव अभिसिंचित होता रहा है। अव्यक्त सत्ता के दिव्य उपासक कबीर ने कहा था 'दुखिया दास कबीर है'। भक्त-कवियों के आर्त्त-क्रन्दन के पीछे दुःख की करुण अनुभूति ही है। गागर में सागर भरने की अपूर्व कला जाननेवाले, पार्थिव-रूप-शृंगार-दर्शन में आनन्द पाने वाले बिहारीलाल को भी अन्त में भगवान से 'मेरो हरौ कलेस सब' कहना ही पड़ा। रमणी-राधा के अंग-प्रत्यंग पर रसभरी दृष्टि गड़ानेवाले तथा 'जनम-अवधि' रूप निहारने पर भी जिनके 'नयन न तिरपित भेल' उस मैथिल कोकिल ने जीवन के उतार में विवश होकर कहा था--'तातल सैकत वारि-बिन्दु सम सुत-बित-रमनि समाजें'।

आधुनिक युग में साहित्य की यह आर्द्रता और भी बढ़ी। छायावादी और रहस्यवादी कहे जानेवाले कलाकारों के नेत्रों में दुःख के

नीरद उमड़ते दिखाई पड़े जिनकी आर्द्रता में ऐसी उर्वरता और सरसता छिपी कि काव्य-भूमि एक बार पुलकित हो उठी। अलौकिक सौन्दर्य दर्शन से प्राप्त आनन्द में झूम झूम कर गाने वाले भारती के अमर उपासक 'प्रसाद' की 'वेदना विकल फिर आई चौदहो भुवन में' किन्तु उसे 'सुख दिया कहीं न दिखाई' और कवि को कहना पड़ा 'विश्राम कहाँ जीवन में'। कविवर 'पन्त' जी का विश्वास है कि—

'वियोगी होगा पहला कवि
आह से निकला होगा गान'।

आदि कवि के आदि उद्गार के पीछे दुःखानुभूति ही काम कर रही थी। सुश्री महादेवी के हृदय में इसी अनुभूति का प्राधान्य है। उसने अपने अंक में कवयित्री की समस्त भावनाओं और कल्पनाओं को बाँध रखा है। इसी की प्रेरणा से उनकी हृतन्त्री की रागिनी बजती रहती है। दुःख की गहरी और व्यापक अनुभूति तथा तज्जनित व्यापक करुणा एवं दिव्य त्याग भावना से पूर्ण रहस्यात्मकता के कारण ही कवयित्री को विस्मृति-अंक में अलौकिक एवं मधुर सत्ता का मदिर दर्शन सुलभ रहा है। उनकी स्मिति के, हृदय की प्रत्येक कम्पन के, आँसू की प्रत्येक बूँद के पीछे दुःख की झलक स्पष्ट है।

उनके लिये दुःख सन्तप्त संसृति को उसी प्रकार सजल बनाये रखता है जैसे ग्रीष्म से झुलसे जग को बादल। उसके अभाव में विश्व सूना और नीरस रहता क्योंकि वही संसृति के सूने पृष्ठों में 'करुण-काव्य' लिखता है। दुःख में जीवन का रहस्य है। वह एक ऐसा तार है जिसमें अगणित कम्पन हैं। सारे विश्व को एक सूत्र में बाँधने की क्षमता एक मात्र उसी में है। विस्मय से निर्मित विश्व में—जहाँ प्राण प्राणों से परिचित नहीं—ऐक्यानुभव की ओर संकेत रूप में ही दुःख की स्थिति है। सुख हृदय को संकुचित और दुःख उसे व्यापक तथा

उदार बना देता है। 'मनुष्य सुख को अकेले भोगना चाहता है किन्तु दुःख सबको बाँट कर' और कवयित्री का विश्वास है कि 'हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता।'

'रजत रश्मियों की छाया में धूमिल घन-सा वह आता।
इस निदाघ से मानस में करुणा के स्रोत बहा जाता॥
उसमें मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का,
एक सूत्र सबके बन्धन का.
संसृति के सूने पृष्ठों में करुण काव्य वह लिख जाता।

× × ×

दुःख के पद छू बहते झर झर,
कण-कण से आँसू के निर्झर
हो उठता जीवन मृदु उर्वर
लघु मानस में वह असीम जग को आमन्त्रित कर लाता।

इस प्रकार इतना स्पष्ट होने पर कि दुःख की व्यापक अनुभूति-भूमि पर ही महादेवी के काव्य-जगत की सृष्टि है, उनकी दुःखानुभूति से सूक्ष्म परिचय प्रत्येक जिज्ञासु को वाञ्छनीय ही नहीं, आवश्यक भी होगा क्योंकि कार्य का परिचय कारण के सम्यक् ज्ञान के बिना भ्रामक या अपूर्ण हो सकता है। 'अन्तर्जगत की एक सूक्ष्म भावना वाह्य संसार में स्थूल और वहुरूपिणी बन जाती है' इसका अनुभव हम प्रत्येक को है। गंगा की पवित्र धारा कई शाखाओं में विभक्त हो कर सागर में मिलती है। उसकी परीक्षा किसी शाखा में न होकर उसके उद्गम अथवा तन्निकट स्थान में होनी चाहिये।

महादेवी जी का मत है कि 'विश्व-जीवन को अपने जीवन में, विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल-बिन्दु समुद्र में मिल जाता है कवि का मोक्ष है।' इस कथन की सत्यता का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि यह स्वयं कवि-काव्य का सत्य है। साहित्य की उच्च भूमि पर पहुँचने के बाद अपनी जैसी कोई वस्तु ही नहीं रहती। साहित्यकार विश्व का—जीवन का—पूर्णतः वा अंशतः तटस्थ दर्शक नहीं होता। उसकी निरपेक्ष-स्थिति का महत्व और कहीं भले हो किन्तु साहित्य में नहीं। जीवन की उलझनों में उलझा हुआ मानव जब किसी विलक्षण दशा में भाव-लोक में प्रवेश करता है तो क्या उस समय वह इस लोक का प्राणी बना रहता है? सभ्य एवं सुशिक्षित व्यक्तियों के मध्य में चलते चलते नगर की सड़क पर भावावेश के कारण कानों में उँगलियाँ डाले जब कभी देहाती ग्वाला बिरहा गा पड़ता है, तो क्या उस समय उसका हृदय-लोक अपनी लघुसीमा में ही बँधा रहता है? जब साधारण व्यक्ति की यह बात है तो साहित्यकार के इस मोक्ष को कैसे कोई कल्पना अथवा भ्रम कह सकता है।

अब देखना यह है कि इस कवि-मोक्ष की प्राप्ति में प्रेरणा और सम्बल कहाँ से और किस रूप में मिलता है। विश्व-जीवन को अपने जीवन में घुला-मिला कर एक कर देने के लिये स्वार्थ की संकुचित सीमा का पूर्ण त्याग करके मानव-हृदय को असीम से मिलना होगा, उसके लघुत्व को बढ़ कर विराट होना पड़ेगा। इस नाना रूपात्मक विश्व की अनेकता में, विशेष से सामान्य होकर, एकता के रहस्य का दर्शन करना होगा। 'चिन्तन की प्रखर रश्मि-जाल लेकर अनेकत्व का आभास दिलानेवाली मोह-निशा को नष्ट करता हुआ मानव मस्तिष्क बहुत दिनों से एकत्व का ज्ञान प्राप्त करता रहा है' यह किसी से छिपा

नहीं है। किन्तु यतः साहित्य मस्तिष्क के गौण सम्बन्ध में बद्ध है क्यों कि उसका सीधा प्रमुख सम्बन्ध हृदय से है अतः दार्शनिक चिन्तन मात्र का सम्बल लेकर चलनेवाला साहित्यकार अपना रूप ही बदल डालेगा। सच्चे साहित्यकार को हृदय की प्रेरणा अनिवार्य है। हृदय द्रवित होता है भावों से—अनुभूतियों से।

और करुणा अपनी परिधि में सभी भावों-अनुभूतियों को घेर विशाल से विशालतर, ससीम से असीम, दिव्य से दिव्यतर होती चलती है। धारा में असंख्य बुदबुदों की भाँति उसमें व्यक्ति के सुख-दुःख बनते-मिटते रहते हैं। इस भाव-धारा में विद्युत भी सरस बनी रहती है। बड़े बड़े शिला-खण्डों को हँस हँस ढोने तथा उन्हें भी सजल बनाने की शक्ति इसी में है। बादल के कोमल करुण-हृदय में बिजली का आवास है। वसुन्धरा के उदार हृदय ही में ज्वालामुखी की तड़पन को सुलाने की क्षमता है। जिस प्रकार विद्युत-सी वेदनापुंज को हृदय से लगाये बादल विश्व का कल्याण करता है और अपने अस्तित्व को मिटा कर विश्व-प्राणमय बन जाता है उसी प्रकार करुणार्द्र हृदय ही विश्व-वेदना में अपनी वेदना डाले, उसे अपने गले का हार बनाये, सीमा-हीन होकर विश्व-रूप प्राप्त कर सकता है।

करुणा की निरन्तर गतिशीलता है दुःखानुभूति की व्यापकता में, उसी दुःख की अनुभूति में जिसकी विशाल छाया में यह विश्व शिशु के समान सोता है किन्तु जो कवयित्री के आँसुओं में प्रति क्षण खोता रहता हैं।

> 'जिसकी विशाल छाया में
> यह जग बालक सा सोता है।
> वह दुख मेरी आँखों में
> आँसू बनकर खोता है॥'

किन्तु 'ससार जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है' वह महादेवी जी के पास नहीं है। उन्हें 'जीवन में बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है परन्तु उस पर दुःख की छाया भी न पड़ सकी।' इसी कारण से महादेवी की अनुभूति व्यक्तिगत पीड़ाजन्य न होकर मानसिक-चिन्तन की प्रौढ़ता तथा जीवन के अनुभवों की सूक्ष्मता से प्राप्त है। किंचित इसीलिये वह पार्थिवता से दूर है, उसमें अपना क्रन्दन नहीं अपितु विश्व-क्रन्दन मुखर हो उठा है। इनके भाव सूक्ष्म और उनकी अभिव्यक्ति रहस्यात्मक है जिससे बहुतों को उनकी वास्तविकता में भ्रम हो उठता है. हम इसके बारे में आगे विचार करेंगे। जैसे जैसे चिन्तन द्वारा प्राप्त जीवन-दर्शन में प्रौढता आती गई और अनुभव का प्रमाण मिलता गया वैसे वैसे महादेवीजी की अनुभूति व्यापक और सूक्ष्म होती गई।

जिस समय 'नीहार' की रचना हुई उस समय उनकी अनुभूतियों में ठीक वैसी 'कुतूहल-मिश्रित वेदना उमड़ आती थी जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देनेवाली अप्राप्य सुनहली ऊषा और स्पर्श से दूर सजल मेघों के प्रथम दर्शन से उत्पन्न होती है।' प्रकृति की गोद में खिला हुआ फूल मानों उन्हीं के हृदय में खिला हो, किन्तु अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव मे उन्हें एक अव्यक्त वेदना भी होती थी। किसी की दीन दशा पर तुरत पिघल जाना कवयित्री को अपनी करुणहृदया माता से संस्कार रूप मे प्राप्त था ही अतः वेदना के इसी प्रारम्भिक रूप ने शीघ्र सहानुभूति को जन्म दिया और विश्व के दुखी प्राण उन्हें अपने से बने। यहाँ तक कि—

किरणों को देख चुराते
चित्रित पंखों की माया।
(उनकी) पलकें आकुल होती थीं
तितली पर करने छाया॥

और घने मेघों से घिर कर जब नभमण्डल झुक जाता था तो उसकी अज्ञात वेदना का मानसिक दर्शन करके उनका हृदय वेदना से भर उठता।

> घिर कर अविरल मेघों से,
> जब नभ-मण्डल झुक जाता।
> अज्ञात वेदनाओं से,
> मेरा मानस भर आता॥

स्वाति के लिए रोते हुये चातक के भोले हृदय की तड़पन का चिन्तन महादेवी जी की सुकुमार आँखों में 'करुणा का सावन' बसा देता रहा।

> 'नव मेघों को रोता था
> जब चातक का बालक मन,
> इन आँखों में करुणा के
> घिर घिर आते थे सावन।'

सहानुभूति ने उनके हृदय को दर्पण की भाँति ऐसा निर्मल बना दिया कि उसमें सभी के सुख-दुख अपने लगने लगे।

> 'अपने पन की छाया तब
> देखी न मुकुर मानस ने,
> उसमें प्रतिबिम्बित सबके
> सुख-दुख लगते थे अपने।'

दूसरों का विषाद ही नहीं, आह्लाद भी महादेवी को मुग्ध किये बिना नहीं रह सकता था। बादलों के ताल पर चपला का बेसुध-नर्तन उनक मन को बाल शिखी के समान नचाता रहा।

> 'गजन के द्रुत तालों पर
> चपला का बेसुध नर्तन

मेरे मन बाल शिखी में
संगीत मधुर जाता बन।'

आकाश में तथा कलियों में नूतन लज्जा के कारण व्याप्त अरुणिमा से उन्हें रोमांच हो आता रहा।

'जो नव लज्जा जाती भर
नभ में कलियों में लाली
वह मृदु पुलकों से मेरी
छलकाती जीवन-प्याली।'

उनके लिये—

'स्मित ले प्रभात आता नित
दीपक दे सन्ध्या जाती,
दिन ढलता सोना बरसा
निशि मोती दे मुस्काती।'

अनुभव-परिधि के भीतर कवयित्री को सुख और दुःख दोनो दिखाई पड़े, वैभव और अतुल विषाद के दर्शन हुये। एक ओर तो प्रकृति की चिरयौवन-सुषमा, जिसमें नीले कमलों पर हँसते हुये हिम-हीरक, सौरभ पीकर मद-मस्त पवन, पराग और मधु से पूर्ण वसन्त की छाया, मकरन्द-पगी केसर पर बैठी हुई परियां, नूतन किसलय के झूले में झूलता अलि-शिशु, असीम आँगन में जगमग जलने वाली (तारों की) दीवाली, जल की कलकल में घुलता हुआ विहगों का कलरव और अम्लान हँसी है। दूसरी ओर मुरझाई पलकों से गिरते हुये आँसू-कण, दुःख के घूँट पीती हुई ठण्डी साँसें, सन्तापों से झुलसे हुए प्राणों का पतझर, उर-पिंजर में पड़ा कण-कण को तरसता हुआ जीवन-शुक, पत्थरों में मसले हुये फूलों-सा शैशव, अनजान में नष्ट होता हुआ प्राण, निर्निमेष नयनों वाली चिन्ता और आँसुओं का अक्षयकोष लिये जर्जर मानव-

जीवन है। इस वैषम्य को देख कर महादेवी जी का भोला हृदय प्रकृति से पूछता है—

> 'कह दे माँ, क्या अब देखूँ ?'
>
> × × ×
>
> 'तेरा वैभव देखूँ
>
> या जीवन का क्रन्दन देखूँ ?'

जीवन का यह करुण-क्रन्दन अब से कवयित्री के चिन्तन का विषय बनकर उनकी अनुभूतियों को नवीन अभिव्यक्ति देने लगा। उन्होंने देखा कि जीवन का भविष्य कुहर सा अस्पष्ट और भूत घनान्धकारपूर्ण है। कौन जानता है कि यह जीवन कहाँ जा रहा है ? क्षुब्ध भव-सिन्धु की उत्ताल तरंगों पर बहते हुये जीवन-दीपक का झंझा के आघातों को सहते हुये जलना ही रहस्य है, बुझ जाना तो स्वाभाविक है।

> 'इन उत्ताल तरंगो पर सह—
>
> झंझा के आघात,
>
> जलना ही रहस्य है, बुझना—
>
> है नैसर्गिक बात।'

उन्हें अनुभव हुआ कि जीवन की प्रत्येक साँस में अनुतापों का दाह है और साथ ही साथ कल्पना का अविराम प्रवाह भी, एक शाप है तो दूसरा वरदान। मानव-प्राण इन्हीं शाप वरदानों का सन्धान (योग) है। उसे निराशा ठुकरा देती है और फिर आशा हँसा जाती है। यह मायाबी संसार उसे इसी प्रकार नचाता रहता है किन्तु मोह-मदिरा का आस्वादन करने के कारण विष भी संजीवन-सा लगता है। जीवन का वैभव क्षण भंगुर है ठीक वैसे ही जैसे फूलों का राज्य, भौंरों की मधु-गुंजार और कोयल का उन्माद लिये वसन्त अल्प समय बाद अन्तर्धान हो जाता है। इस विश्व में अनन्त यौवन कहाँ ?

'न रहता भौंरों का आह्वान
नहीं रहता फूलों का राज्य,
कोकिला होती अन्तर्धान
चला जाता प्यारा ऋतुराज।'

चन्द्रमा भी अपनी चांदनी का शृंगार समेट कर डूब जाता है। मेघ रिक्त होने के निमित्त ही भरते हैं और दीपक भी जलता है बुझने के हेतु। काल अपनी निष्ठुरता में इतना असी है कि जिन प्राणों का निर्माण सुषमा मात्र से हुआ था, जिनका जीवन तुहिन-बिन्दु सा, मंजु कुसुम-सा, सुकुमार था, उन्हें भी पाषाणों के भीतर शयन करना पड़ा।

'जिन अधरों की मन्द हँसी थी
नव अरुणोदय का उपमान
किया दैव ने जिन प्राणों का
केवल सुषमा से निर्माण,
तुहिन बिन्दु-सा, मंजु सुमन-सा
जिनका जीवन था सुकुमार
दिया उन्हें भी निठुर काल ने
पाषाणों का शयनागार।'

यह जीवन कितना करुण है? यहाँ आशा निराशा बन जाती है, प्रेम तप्त उच्छ्वासों में परिणित होता है, दिव्य आलोक तिमिर मे तिरोहित हो उठता है और हास भी रुदन बन जाता है। जिस प्रकार घन अंचल में इन्द्र धनुष और किसलय-दल में सुकुमार तुहिन-बिन्दु पल-पल में मिटते रहते हैं इसी प्रकार यह कोमल जीवन अपनी विभूतियों में लिपटा हुआ प्रतिक्षण नाश होता रहता है, 'सिकता में अंकित रेखा-सा, वात-विकम्पित दीप-शिखा-सा,' इसकी स्थिति नाजुक है। एक दिन वह काल-कपोलों पर आँसू के समान चुपचाप ढुलक पड़ता है और इस

रहस्यमय जीवन को लिये यह विस्मय का संसार, जिसमें अखिल विभव है, धूलि में क्षण मात्र खिलकर, अन्ततोगत्वा धूलि में ही अन्तर्धान हो जाता है।

'और यह विस्मय का संसार
अखिल वैभव का राजकुमार,
धूलि में क्यों खिल कर नादान
उसी में होता अन्तर्धान ?'

आदि में अन्त विलीन होता है और अन्त में नया विधान बनता है, इस प्रकार यह संसार एक सूत्र है जिसमें सुख-दुख, जय-हार गुँथे हैं।

'आदि में छिप जाता अवसान
अन्त में बनता नव्य विधान
सूत्र ही है क्या यह संसार
गुँथे जिसमें सुख-दुख जय-हार ?'

विश्व-जीवन परिवर्तन की डोर में झूलता हुआ कितना असहाय है, निरुपाय है !

'गुलालों से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में आशा दीप
विहँसती सन्ध्या भरी सुहाग
दृगों से झरता स्वर्ण-पराग'

किन्तु तुरत ही—

'उसे तम की बढ़ एक झकोर
उड़ा कर ले जाती किस ओर ?
अथक सुषमा का सृजन विनाश
यही क्या जग का श्वासोच्छ्वास'

काल की लहरों में बुलबुले निरन्तर विलीन होते रहते हैं और उन्हीं

के साथ-साथ उनका छोटा सजल ऐश्वर्य भी प्यासे प्राण लेकर डूब जाता है

'काल की लहरों में अविराम
बुलबुले होते अन्तर्धान
सजल उनका छोटा ऐश्वर्य
डूबता लेकर प्यासे प्राण'

सोने का साम्राज्य राख हो जाता है और मधुमें भीने फूल हृदयमें मदिरा-चाह भरे हुये मृत्यु के हिम-अधरों की राह देखते हैं। फिर भी यह कोमल जीवन उलझनों का निष्फल व्यापार करता है और प्रतिपल साँसों के तार पहेली की सृष्टि करते रहते हैं। इस प्रकार महादेवी जी के कोमल हृदय को जीवन की विषादपूर्ण, जर्जरित, नग्न झाँकी होने लगी। 'स्वप्न लोक की अमर कहानी अपने आप कहता सुनता, काँटों में खिला हुआ कोमल-प्राण कुसुम मानो सन्देश देता—

'सखे! यह है माया का देश
क्षणिक है मेरा तेरा संग'

और उनका हृदय स्वतः कह उठता—

'शून्य से बन जाओ गम्भीर
त्याग की हो जाओ झंकार
इसी छोटे प्याले में आज
डुबा डालो सारा संसार।

(और फूलों की भाँति) 'उठो पहनो काँटों के हार'
(क्यों कि) 'यहाँ मिलता काँटों में बन्धु!
सजीला-सा फूलों सा रंग'।

कवयित्री के रोम रोम में जग का विषाद मूर्तिमन्त बन उठा और विश्व-क्रन्दन को चिर-शान्ति देने, उसकी ज्वाला को शान्त करने के निमित्त

वह आतुर हो उठीं। पावस-घन के समान उमड़ कर और फिर बिखर कर, अपने लघु आँसू में, जग की वेदना को धो लेने की अभिलाषा उनके हृदय की प्रबलतम प्रेरणा बनी। इस दग्ध-दुखी विश्व को मधुर राग गा-गा कर विश्राम प्रदायिनी नींद में सुलाने की, सौरभ बन कर कण कण को सुगन्धित तथा शीतल करने की साध उनके सुकुमार प्राण में अपना घर बना लेती है।

'पावस घन सी उमड़ बिखरती
शरद निशा-सी नीरव घिरती
धो लेती जग का विषाद
ढुलते लघु आँसू-कण अपने में
मधुर राग बन विश्व सुलाती
सौरभ बन कण कण बस जाती,
भरती मैं संसृति का क्रन्दन
हँस जर्जर जीवन अपने में।

और संसृति का क्रन्दन एवं सन्ताप अपने जीवन में भरने की साध ने जलने में आनन्द माना, उसे दुःख को चिर सुख मान लेना ही दुःख का अन्त समझ पड़ा।

'है पीड़ा की सीमा
दुख का चिर सुख हो जाना।'

× × ×

वेदना को उन्होंने अपने गले का हार बनाया। जिस प्रकार भींगा वस्त्र शरीर से लिपटा रहता है उसी प्रकार पीड़ा कवयित्री के मानस से लिपटी है।

पीड़ा मेरे मानस से
भींगे पट सी लिपटी है

डूबी सी यह निश्वासें
ओठों में आ सिमटी है।

महादेवी जी ने देखा कि विश्व की सभी महान विभूतियों में असीम वेदना, जलन, छिपी है। वे इसी लिये महान हैं कि उनमें अनन्त पीड़ा है। जिसका स्पर्श मात्र बड़े बड़े अचलों को भी चूर-चूर कर देता है उस विद्युत को अपने उर में लिये बादल स्वयं मिटकर संसार भर को नव जीवन प्रदान करता है—उसके दृगों में अश्रु, अधर मे हास और हृदय में असीम वेदना का आवास है। सागर भी अपनी गम्भीरता में असीम वेदना डाले विश्व का कल्याण करता रहता है अन्य को अपने मीठे फल और विश्राम देने वाले कोमल वृक्ष भी अग्नि को छिपाये रहते हैं। अपनी उदारता से चराचर का कल्याण करने वाली वसुन्धरा ने भी अपने हृदय में तापों की हलचल को बन्दी बना रखा है जिसके क्षणिक उद्‌गार से बड़े बड़े पर्वतों का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। लघु-प्राण दीपक भी जलकर ही आलोक बन उठता है। एक छोटा बीज स्वयं को गलाकर असंख्य बीजों की सृष्टि करता है, वृक्ष के पत्ते नवीन पत्तों को उत्पन्न करने के लिये ही गिर पड़ते हैं। फूल भी संसार को सुरभिपूर्ण करता हुआ झर पड़ता है और अपनी निष्फलता में ढलता हुआ दिन संसार को रागमय बना ही जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि एक मिटने में सौ सौ वरदान है और विफलता ही में पूर्ति-विकास है। यही है सृष्टि का अमिट विधान।

सृष्टि का है अमिट विधान
एक मिटने में सौ वरदान,
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास
विफलता में है पूर्ति-विकास।

दूसरी ओर यह भी प्रश्न उठता है कि यदि जीवन में सुख ही होता

तो क्या जीवन आनन्द को प्राप्त कर पाता? उत्तर होता "नहीं"। चिर सुख में जीवन की सभी इच्छायें तृप्त हो कर उसे समाप्त कर देती हैं क्योंकि अतृप्ति जीवन है और तृप्ति उसका अवसान। हमारी प्यास भी बुझने पर विरक्ति बन जाती है।

'बुझते ही प्यास हमारी
पल में विरक्ति जाती बन'

अतः 'चिर-अतृप्ति है जीवन', उसी में आनन्द है। भला तृप्ति में आनन्द कहाँ? चिर-यौवन भी आकर्षण हीन सा, निर्जीव सा होता। यदि कहीं विश्व की सुषमा को चिर-यौवन मिला होता तो वह प्रतिमा सी अम्लान रह कर हमारे किसी काम की न होती।

'चिर यौवन पा सुषमा होती
प्रतिमा सी अम्लान,
चाह चाह थक थक कर
हो जाते प्रस्तरसे प्राण।'

(और)

सपना होता विश्व हासमय
आँसू मय सुकुमार।'

उसी कारण कवयित्री की अपने अज्ञात प्रिय से प्रार्थना है:—

'मेरे छोटे से जीवन में
देना न तृप्ति का कण भर
रहने दो प्यासी आँखे
भरती आँसू के सागर'

उन्हें पीड़ा इतनी मधुर हो चली कि अब उसका वियोग भी असह्य हो गया। वे चाहती हैं कि उनका जीवन गुलाब के फूल सा काँटों में ही पले क्योंकि स्पष्ट है कि अपना हृदय बिना बिंधवाये कोई औरों के गले का हार नहीं हो सकता।

'शूलों में नित मृदु पाटल सा
खिलने देना मेरा जीवन'
वह क्या हार बनेगा जिसने
सीखा न हृदय को बिंधवाना'।

अब तक जो कुछ कहा गया उसका तात्पर्य यही स्पष्ट करना रहा कि हिन्दी साहित्य के समस्त कलाकारों में पीड़ा की सबसे गहरी और व्यापक अनुभूति महादेवी जी को किस प्रकार मिली यद्यपि उनकी अनुभूतियों की वास्तविकता में कुछ शंकालुओं को आपत्ति है किन्तु, जैसा कि हम उस विषय पर आगे विस्तार पूर्वक विचार करेंगे, उनकी आपत्तियों में ही वास्तविकता की कमी है न कि कवयित्री की दुःखानुभूति में। संक्षेप में इस स्थल पर इतना तो स्पष्ट हो चुका है कि प्रारम्भिक वेदना ने ही व्यापक हो कर यह रूप लिया है जिसके पीछे दर्शन का चिन्तन और जीवनके अनुभव खड़े हैं।

आरम्भ में ही इस ओर संकेत हो चुका है कि आदि कवि से लेकर आज तक कवि-हृदय में व्यथा की धारा प्रवाहित होती रही है यद्यपि उसकी दिशा, गहराई और सीमा सदा एक सी न रही। एक ओर उसकी पवित्र धारा पृथ्वी को छोड़ कर, स्वर्ग गंगा सी, शून्य में बह कर अपने पीयूष-सीकरों से अखिल मानवता को शीतल करती हुई भक्त-साहित्य में प्रतिफलित हुई, तो दूसरी ओर अपनी वेदना की हलचल में विक्षिप्त, अपने को चारो ओर से समेटती हुई अपनी पार्थिव अभिव्यक्ति में बेसुध प्रगतिवाद के नाम से विख्यात हुई। 'इन दो स्थितियों के बीच इसके कितने रूप अब तक बन पाये हैं इसे थोड़े में गिना देना सहज नहीं। हाँ, इतना निर्विवाद है कि इन दो रूपोंके परे इसके कई और रूप हैं। लौकिक विरह-जन्य तड़पन के माध्यम से पारलौकिक सत्ता के प्रति रहस्यपूर्ण विरह वेदना को व्यक्त करने वाली रहस्यवादी धारायें,

अपने तप्त उच्छ्वासों में लिपटे हुए सांसारिक प्रेम की मधुर छट पट में गतिवती हालावाद जैसी पता नहीं कितने नामों वाली भिन्न भिन्न धारायें उसी कवि-हृदय से प्रवाहित व्यथा की धारा के ही रूपान्तर हैं।

किन्तु यही धारा महादेवी जी के करुण-हृदय में 'कूल-हीन प्रवाहिनी' हो उठी है।' इसकी छोटी सीमा असीम से मिलकर अन्तर्धान है। हम उसे किसी वाद के लघु बन्धन में नहीं बाँध सकते। उसमें दुःखी विश्व को शीतल करने के निमित्त, घन की भाँति घिर घिर कर मिटने और मिट मिट कर घिरने की असीम अभिलाषा है :—

'घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय !'
'नित घिरूँ झर-झर मिटूँ प्रिय !'

इसमें प्रत्यक्ष सत्ता (संसार) का सम्पूर्ण विषाद और क्रन्दन तथा अप्रत्यक्ष सत्ता (ब्रह्म) का अनन्त माधुर्य और चिर आनन्द है। अपनी वेदना को उसने विश्व-वेदना में तिरोहित कर दिया है। मीरा की भाँति महादेवी जी यह नहीं कहतीं कि :—

'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।' यह सम्पूर्ण विश्व ही उन्हें अपना है, यहाँ पराया कौन है ? आर्त्त भक्तों की भाँति उनकी प्रार्थना अपने कष्ट निवारण के लिये नहीं है अपितु औरों के विषाद को दूर करने के निमित्त है। वे अपने प्रिय से कहती हैं :—

'मेरे गीले पलक छुओ मत
मुर्झाई कलियाँ देखो ?'
विखरी पंखुरियाँ देखो'

उनके आँसू अपने लिये नहीं अपितु जग के लिये गिरे हैं।

इस दुःखानुभूति की व्यापकता और व्यथा-प्रियता ने महादेवी जी को उस गूढ़ सत्य का दर्शन सुलभ किया जिसका दर्शन मानव-प्राण बड़ी तपस्या के बाद कर पाता है। वह स्वयं भी पूछती हैं :—

पा लिया मैंने किसे इस
वेदना के मधुर क्रय में ?'

विश्व-क्रन्दन को-उसकी पीड़ा को-अपनी बनाकर और उसमें आनन्द का दर्शन करके, महादेवी जी ने पारलौकिक सत्ता का मधुर प्रणय खरीदा जिसकी रहस्यभरी सुधिमात्रसे उनके 'अधखुले दृगों के कंज-कोष पर छाया विस्मृति का खुमार ।' इसी प्रणय-व्यापार की कलापूर्ण अभिव्यक्ति महादेवी जी का साहित्यिक रहस्यवाद है जिसका सूक्ष्म अध्ययन आगे किया गया है ।

२

रहस्यवाद और छायावाद

परिचय मात्र

जड़ और चेतन की ग्रन्थि में उलझा हुआ मान[illegible] ओर अपनी जड़ता में—अपने अन्धकार में—अपने [illegible] तथा नवीन बंधनों की सृष्टि करके उसमें चुपचाप आनन्द लेता [illegible] बँधता रहता है तो दूसरी ओर अपनी चेतना में चिर-मुक्ति के लिये—अपने पवित्र रूप की प्राप्ति के निमित्त—प्रयत्न भी करता है। भौतिक संकटों के कारण जिस प्रकार वह क्षुब्ध हो कर उसके निवारण के लिये बड़ा से बड़ा प्रयत्न करता है उसी प्रकार उसके भीतर बैठा हुआ चैतन्य अपने पूर्व रूप की स्मृतियाँ लिये अपने बन्धन में तड़पता हुआ निर्वाण की कामना भी करता रहता है। उसे अपने निर्मल, चिरनूतन, ज्योति-र्मय रूप की स्मृति निरन्तर बनी रहती है—अपनी दिव्यता का अनुभव उसे अन्धकार में भी होता रहता है। मानव चेतन के इसी प्रयत्न के

परिणाम हमारे दर्शन शास्त्र हैं, जिन्होंने प्रत्यक्ष (विश्व) और परोक्ष (अज्ञात, सर्वशक्तिमान) सत्ता के रहस्य का उद्घाटन करते हुए मानवता की मुक्ति का मार्ग ढूँढ़ निकाला। दर्शन की आदिम अवस्था में संसार के ज्योतिष्पुंज, शक्तिशाली अंश, मानव को एक एक देव ज्ञात हुये और उनकी पूजा में, उनकी कृपादृष्टि प्राप्त करने में, वह दत्तचित्त हुआ। सविता, इन्द्र, वरुण आदि भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र देवों की महत्ता निश्चित हुई। वेदों में इन देवताओं की स्तुतियाँ हैं। इनकी अप्रसन्नता मानव को किसी भी विपत्ति में डाल सकती थी। पुत्र, कलत्र, गौ आदि के योग-क्षेम का सारा अधिकार इन्हीं के पास रहा। इन्हीं देवी, देवताओं की आराधना में यज्ञों की सृष्टि हुई और त्रस्त मानवता ने इन्हीं को प्रसन्न करना अपने जीवन का प्रमुख लक्ष्य बना डाला।

धीरे धीरे दर्शन में प्रौढ़ता आने लगी और उसने देखा कि ये शक्तिमान भी अपनी क्रिया किसी नियमित योजना के अनुसार करते हैं। अपने काम में मनमानी करने का अधिकार इन्हें नहीं है। प्रतिदिन ठीक समय पर ऊषादेवी आकर संसार को अपनी मधुर आभा से जाग्रत कर जाती हैं और तुरत सविता विश्व को आलोक प्रदान करने के निमित्त आ जाते है। पवन, इन्द्र और वरुण आदि सभी इसी प्रकार अपना कार्य नियमानुसार करते हैं। इस कारण दार्शनिकों ने यह निश्चय किया कि यद्यपि ये देवता हमसे अधिक शक्तिमान हैं किन्तु इनसे भी शक्तिमान कोई और सत्ता है जो इन सबों का नियन्त्रण करके इन्हें अपने अपने कार्यों में लगाये रहती हैं। उसकी अवहेलना करने की शक्ति इनमें नहीं है। उसके कठोर अनुशासन में ही इनको भी काम करना पड़ता है। जब वह चाहता है तो आकाश में अपनी मधुर ज्योत्स्ना लिये चन्द्रमा संसारको शीतल कर जाता

है और फिर घोर अन्धकार अपने गूढ़ अंक में बिठा कर उसे कहीं छिपा आता है। ऋतुओं के रूप में उसी की क्रीड़ामयी इच्छा संसार को चकित करती है। इस प्रकार अनेक देवी-देवताओं के पीछे एक महानशक्ति का आभास दार्शनिकों को हुआ—अनेकेश्वरवाद के स्थान पर एकेश्वरवाद की स्थापना हुई। भिन्न भिन्न स्वतन्त्र देवता भी एक सम्बन्ध-सूत्र में गुँथे गये। वह सर्वशक्तिमान सबका ईश्वर बना। इतना ही नहीं अपितु दार्शनिक मानव ने यह भी पता लगा लिया कि वह ईश्वर विश्व से सर्वथा भिन्न, अपनी निरपेक्ष स्थिति में, नहीं है। विश्व भिन्न और ईश्वर भिन्न है, ऐसी बात नहीं है। वह सत्ता साधारण से लेकर महान तक सभी में व्याप्त है। उसी के अंश से विश्वका निर्माण होता है। सूर्य-चन्द्र उसी के अंश हैं, ऊषा में उसी की आभा है, मारुत में उसका उच्छ्वास है और संसार के सभी विभव-पूर्ण दृश्यों में उसी की झलक है। जड़ और चेतनका उत्पत्ति-स्थान भी वही है। किन्तु वह पूर्ण और अज्ञात ही बना रहता है।

इसके आगे भी चिन्तन की धारा बढ़ी और मानव ने एक और रहस्य को खोज निकाला। जब यह सम्पूर्ण विश्व उसी एक के अंश से है और उसकी सर्वव्यापकता स्वयं सिद्ध है—वह कण कण में व्याप्त है—तो मानव के भीतर बैठा हुआ चेतन भी उसीका रूप है—वही है। जड़ के पाश म पड़ने से उसकी भिन्न स्थिति का आभास मात्र होता है। वास्तव में, उसमें और पूर्ण ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है। इस ज्ञान के आते ही मानव ने सदियों बाद अपनी वास्तविकता जानली और 'मै ही ब्रह्म हूँ' उसका दृढ़ सिद्धान्त बना। वेदान्त और उपनिषद ग्रन्थों में यही उपदेश अखिल मानवता को दिया गया। इस ज्ञान के कारण जड़ की कारा चेतन के लिये क्रीड़ा-वाटिका मात्र

बनी और द्वैत अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि कतिपय दिव्य मार्गों पर जर्जरित मानवता ने निःसंकोच पग बढ़ाया।

साहित्य के पवित्र एवं उदार भाव-लोक में इन दिव्य मार्गों की गति हुई। हमारे साहित्य की काव्यधारा आदि से आज तक, प्रायः इनमें से किसी न किसी पथ को शीतल करती रही है। वीर गाथा-काल में काव्य का प्रधान और एक मात्र लक्ष्य वीर-रस का आस्वादन करना रहा अतः इन दार्शनिक चिन्तनों का प्रभाव उस समय के साहित्य म न पड़ सका। किन्तु भक्ति-काल में द्वैत, अद्वैत और विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तों का प्रतिपादन काव्य में प्रचुर रूप से किया गया। यतः दार्शनिक चिन्तन के परोक्ष, निराकार सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् का मानसिक प्रत्यक्षीकरण मात्र काव्य के लिये पर्याप्त न था क्योंकि वह तो भाव और अनुभूतियों के माध्यम से ही अपनी अभिव्यक्ति करता है अतः उसे इस बात की परम आवश्यकता हुई कि उस सत्ता को कोई मधुर रूप दिया जाय। अवतारवाद म विश्वास रखने वाले भक्तों को तो भगवान सगुण रूप में मिल ही गये अतः उन्हें अपनी ओर से कुछ न करना पड़ा। सूरदास और गोस्वामी तुलसीदास के काव्यों में हमें मही का भार उतारने वाले भगवा न का वही सगुण रूप मिलता है जो उन्हें दार्शनिक चिन्तन की शाखा विशेष द्वारा प्रा था। मीरा के गिरिधर नागर भी सगुण थे अतः जब उनके रूप-माधुर्य पर दीवानी होकर उसने अपनी प्रणाय ानुभूति एवं विरह-सन्ताप की काव्यात्मक अभिव्यक्ति की तो संसार को कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। क्योंकि व्रज के कुंजों में रास रचाने वाले और प्रेम-सूत्र में बँधकर स्वयं नाचने वाले सगुण भगवान कृष्ण मीरा की प्रेम-पुकार सुन कर उसके पास आ सकते थे इसमें विस्मय की बात नहीं। किन्तु विस्मय तो सबको तब हुआ जब ज्ञानी कबीरके निर्गुण, निराकार, अव्यक्त 'साहिब'

प्रियतम के रूप में सगुण बनते हुये भी निराकार ही रहे हैं—अलख होते हुये भी अपने प्रेमियों द्वारा देखे गये। यहीं पर एक रहस्य ने सबको चकित कर दिया। कबीर दास हिन्दी साहित्य के प्रथम रहस्य-दर्शी कलाकार समझे गये।

पहले कहा जा चुका है कि निराकार, निर्गुण का दर्शन ही मानव-प्राण को पर्याप्त न था अतः उसने उस सत्ता को—जो वास्तव में अद्वैतवाद का ब्रह्म है—एक कल्पित, मधुर रूप दे डाला और उसके प्रति मिलन-विरह-भावना में हँसना-रोना आरम्भ किया। अपने इस दिव्य प्रणय-व्यापार को व्यक्त करने के लिये उसने लौकिक रूपकों का आवश्यकतानुसार आश्रय लिया जिसके कारण वह और भी गूढ़ होकर लोगों के लिये रहस्य का विषय बना क्योंकि अपनी पार्थिव अभिव्यक्ति में कल्पना और भाव के ऐकान्तिक योग से प्राप्त, सूक्ष्म एवं परोक्ष के प्रति माधुर्य भाव, भौतिकता में बेसुध मानवता के लिये विस्मय का पर्याप्त कारण है। इस रहस्य में लिपटे प्रणय की अभिव्यक्ति ही रहस्यवाद के नामसे प्रख्यात हुई। इसमें कल्पना को अपनी उछल कूद छोड़ कर हृदय के समीप रहना पड़ता है और भावको भी हृदय के दुर्गमतम तल को अपनी सजलता से आर्द्र करते हुये कल्पना से लिपटे चलना होता है। हम यों भी कह सकते हैं कि रहस्यवाद में भाव कल्पनामय और कल्पना भावमयी होती है।

प्रायः यह देखा गया है कि रहस्यवाद की संक्षिप्त परिभाषा स्वयं एक रहस्य लपेटे पाठकों के सम्मुख खड़ी होकर प्रश्न सूचक चिन्ह अंकित कर देती है। अतः 'रहस्यवाद' की व्याख्या सरल होनी चाहिये। 'रहस्यवाद' शब्द में प्रयुक्त 'रहस्य' शब्द ही सारे घपले के मूल में है क्योंकि रहस्य तो स्वयं गूढ़ है फिर उसमें मिले हुये 'वाद' की स्थिति कितनी आश्चर्यजनक हो सकती है' यह नहीं कहा जा सकता।

साधारण पाठक इस चक्कर में पड़कर 'रहस्यवाद' को समझ नहीं पाते। वस्तुतः 'रहस्य' के साधारण अर्थ और 'रहस्यवाद' में प्रयुक्त 'रहस्य' के विशेष अर्थ में अन्तर है। 'रहस्यवाद' में परोक्ष, निराकार सर्वव्यापी सत्ता के प्रति सूक्ष्म प्रणय-भावना की स्थिति ही रहस्यमयी है क्योंकि प्रश्न यह उठता है कि जब वह अप्रत्यक्ष सत्ता निराकार है तो उसके साथ यह प्रणय कैसा, और वह भी लौकिकता में लिपटा-सा क्यों? भौतिकता से वेष्टित रहस्यवाद की अनुभूतियों में दिव्यता का आभास-मात्र है अथवा उनमें वास्तविकता भी है? इन्हीं तथा ऐसे ही कई अन्य प्रश्नों के दुस्तर जाल में साधारण व्यक्ति पड़ जाता है अतः यहाँ इन्हीं प्रश्नों को सुलझा कर 'रहस्यवाद' के रूप को दिखाने का प्रयास किया गया है।

'रहस्यवाद' के मूलमें अद्वैतवाद की ब्रह्म-विषयक—चिन्तन-धारा निरन्तर गतिवती रहती है, उसका शीतल तथा आनन्ददायी स्पर्श बराबर होता रहता है, यह हमें स्मरण रखना होगा। कल्पना और भाव के मधुर प्रयत्न से वह अप्रत्यक्ष, निराकार साकार बनाया जाता है और उसके साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित होता है। सारा प्रणय-व्यापार भाव भरी कल्पना के दिव्य क्रोड़ में होता है और इसी से उसकी अनुभूतियों की वास्तविकता का प्रश्न उठता ही नहीं क्योंकि साहित्य का सत्य लौकिक (प्रत्यक्ष) सत्य को अपने विस्तृत अंक में लपेटे हुये कुछ और भी होता है। जिस प्रकार हम कवि स्वप्न को—साहित्यिक सत्य को—मिथ्या नहीं कह सकते उसी प्रकार स्वप्नलोक की अनुभूतियों को हमें सत्य रूप में स्वीकार करना ही होगा। इस विषय पर हम अलग विचार करेंगे अतः यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि 'रहस्यवाद' की प्रणयानुभूतियाँ सत्य हैं, भले ही उनकी अभिव्यक्ति भौतिकता के माध्यम से हो। सूक्ष्म सत्ता (ब्रह्म) की अभिव्यक्ति (संसार) भी भौतिक ही है। इस प्रकार यह तय पाया

कि 'रहस्यवाद' में भारतीय वेदान्त का ब्रह्म-चिन्तन, भक्तों की भगवान विषयक सगुण भावना, दिव्य प्रणयानुभूति और लौकिक रूपकों के माध्यम से पार्थिव अभिव्यक्ति की एक साथ रहस्यपूर्ण स्थिति अनिवार्य है। इनमें से किसी एक के अभाव में भी 'रहस्यवाद' अपूर्ण होगा। किसी एक तत्व को लेकर उसी को रहस्यवाद की संज्ञा देना भ्रामक है। हिन्दी साहित्य के प्रथम रहस्यवादी कवि कबीर के सभी पद इस श्रेणी में नहीं रखे जा सकते। कर्म-काण्ड की कटु, किन्तु सत्य, आलोचनाएँ, संसार की शून्यता दिखाकर ज्ञान-विराग उत्पन्न करने वाले उद्‌गार तथा पीड़ित मानवता की मुक्ति-कामना से गाये गये, उपदेश भरे पद रहस्यवाद की सीमा के बाहर हैं। जैसा कि संकेत हो चुका है, कबीरदास जी जब अपने निराकार प्रियतम के साथ अपना मधुर सम्बन्ध स्थापित करके अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिये प्रयत्नशील हुये तभी उनका काव्य रहस्यवाद के मधुर-लोक में आसीन हुआ।

हाथ लगे, रहस्यवाद से सम्बन्धित एक और भ्रम को दूर कर लेना अच्छा होगा। हिन्दी में कई कलाकारों की कृतियों को रहस्यवाद की संज्ञा प्राप्त है और उनमें एक दूसरे से इतनी भिन्नता है कि पाठक को भ्रम उत्पन्न हो उठता है। सूफियों के रहस्य-दर्शन को भावनात्मक और हठयोगियों की रहस्य साधना को साधनात्मक रहस्यवाद कहा गया। कबीर का काव्य अपनी एक विशेष श्रेणी में रखा गया। उपासना के परिधान में लिपटा, मीरा के प्रणय-व्यापार की अभिव्यक्ति भी रहस्यात्मक कहा ही जाता है। दूर की खोज करने वाले रमणी-सौन्दर्य के उन्मत्त पुजारी विद्यापति के मृदु उद्‌गारों में भी रहस्यवाद का दर्शन कर ही लेते हैं। अपनी सांसारिक वासना की साहित्यिक अभिव्यक्ति को भी दिव्य रहस्यवाद के समकक्ष रख कर लोग बिना

हिचक रहस्य दर्शी बनने के शौकीन होते ही जा रहे हैं। इन नक्कालों से भारती का पवित्र मंदिर भी कुछ कुछ कालिमामय हो उठा है। बात यहीं तक होती तो भी गनीमत; आलोचना की नई बहार में नये-नये आलोचकों को भी दूर की सूझी और वे झट अपने बुद्धि-कौशल के प्रदर्शन अथवा बुद्धि-व्यायाम के निमित्त, किसी भी कृति में रहस्यवाद की स्थिति को स्पष्ट करने में ज़मीन आसमान एक करने लगे। किसी कवि के सीधे सादे उद्गार में या तो छायावाद अथवा रहस्यवाद का दर्शन करना जैसे आवश्यक सा हो गया। जब कोई किसी कृति की कुछ पंक्तियों को सम्पूर्ण के बीच से उठा कर, उसकी अलग परीक्षा करके उसे रहस्यवाद के भीतर रखने की धृष्टता ही नहीं अपितु अपनी बुद्धि का विभ्रम भी प्रकट करता है तो आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। सूर और तुलसीदास जैसे सगुणोपासक भक्तों के कुछ पदों में तथा 'हालावाद' जैसे उन्मुक्त भोगवाद में रहस्य-भावना ढूँढ़ने का प्रयत्न भी कम नहीं हो रहा है। अतः प्रत्येक जिज्ञासु को रहस्यवाद के विषय में सजग रहना चाहिये, उसे बड़ी सावधानी से उसके मूल सिद्धान्तों का विचार करना होगा।

आधुनिक युग में स्वर्गीय प्रसाद जी ने रहस्य-दर्शन अवश्य किया किन्तु उनके रहस्यवाद में शैवसिद्धान्त, सौन्दर्य-दर्शन, छायावाद आदि ऐसे ही कई अन्य तत्वों ने मिलकर उसे एक नूतन रूप दे डाला जिसके कारण वह अपनी विशेषता में अकेला है। श्री 'निराला' जी भी आधुनिक युग के रहस्यवादी कलाकार कहे जाते हैं, किन्तु उनके 'रहस्यवाद' की परिभाषा नई गढ़नी होगी। सुश्री महादेवी ही इस युग की रहस्य-दर्शिनी कवयित्री हैं जिनकी रहस्याराधना अपने वास्तविक रूप में है। रहस्यवाद के चार मूल तत्वों का उल्लेख हो चुका है, वही उसका वास्तविक रूप है। अन्यथा कोई भी साहित्यकार कुछ न कुछ रहस्यो-

द्घाटन करने के कारण रहस्यवादी हो सकता है और ऐसा होते ही यह 'वाद' किसी काम का न रह कर व्यर्थ का 'वितण्डावाद' खड़ा कर लेगा। सुश्री महादेवी जी को हिन्दी के अन्य रहस्य-दर्शी गीतिकारों के साथ बिठा कर, उनका तुलनात्मक अध्ययन हम आगे करेंगे और वहीं पर विस्तारपूर्वक यह विचार भी करेंगे कि वास्तव में कौन कितने अंश में रहस्यवादी कहा जा सकता है।

अब एक और विचार कर लेना अवश्यक है। प्रायः छायावाद और रहस्यवादके सूक्ष्म अन्तर को न समझकर कोई एक को दूसरा कह बैठता है। इस लिये छायावाद की रूप रेखा भी स्पष्ट होनी चाहिये। यह कहा जा चुका है कि दार्शनिक चिन्तन में अखिल विश्व एक ही सर्वशक्तिमान, अव्यक्त निराकार सत्ता के अंश मात्र से उद्भूत है। यह सम्पूर्ण सृष्टि उसी शक्ति से व्याप्त है, उसके परे कुछ नहीं है। चेतन तो उसका रूप है ही, किन्तु जड़ भी उसी की विभूति है। जो मानव में साकार है उसी की अभिव्यक्ति प्रकृति में है। यही कारण है कि मानव और प्रकृति के व्यापारों में साम्य है। मनुष्य की भाँति प्रकृति भी विक्षिप्त होती है, अपने उन्माद मे हँसती-रोती रहती है और अपनी ओर अन्य को आकर्षित करने के लिये अपने नित नूतन शृंगार में लगी रहती हैं। प्राकृतिक विभूतियों को देख कर मानवमन सृष्टि के आरम्भ से ही प्रफुल्लित होता आ रहा है और उसे प्रकृति अपने दुःख में उदास और सुख मे उल्लास—भरी ज्ञात होती रही है। मानव-प्रकृति और वाह्य प्रकृति के व्यापारों में छिपे इस रहस्य को साहित्यने अपनी मधुर रुचि के अनुसार सजाया और प्रकृति को मानव के समकक्ष ला बिठाया। सृष्टिके आदि में कई प्राकृतिक विभूतियों को, उनकी मदिर छवि तथा शक्तिमत्ता के कारण, देवत्व भी प्राप्त हो सका। कबूतरों के द्वारा प्रेमी अपना प्रियसंदेश

अपनी प्रेमिका के पास तो अब भी भेज सकते हैं किन्तु साहित्य के विरही-यक्षने अपनी विरह-व्यथा की करुण स्थिति का चित्र अपनी प्रेयसी के पास भेजने का आयोजन मेघ के हाथों किया। मेघदूत की कल्पना में मेघ उतना ही सजीव-साकार है जितना 'स्वप्न लोक की अमर कहानी' कहने वाला सुश्री महादेवीजी का 'सुमन' और मधुर संगीत गाने वाला, 'पन्त' जी का 'उदधि'। किन्तु उस समय काव्य में कल्पना और अनुभूतियों की इस अभिव्यक्ति को किसी 'वाद' की संज्ञा प्राप्त नहीं थी। आज के युग ने ही 'वाद-प्रवादों की सृष्टि करके विलक्षणता उत्पन्न करने की विशेषता प्राप्त की है। नहीं तो आज कल के छायावादी कलाकारों की और हमारे प्राचीन कवियों की अनुभूतियों में अभिव्यञ्जना की नवीन शैलियों के अतिरिक्त कुछ भी अन्तर नहीं है।

महादेवी जी के अनुसार 'छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दुःख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायाबाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एक रूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई, अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु तृण और महान वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलायें, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युत-रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चंचलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं। जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तन-शीलता में, कवि ने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया जिसका

एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके समीप समाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा।' इस परिभाषा के अनुसार छायावाद के मूल तत्व शीघ्र समझे जा सकते हैं। छायावाद की आधार शिला है प्राकृतिक और मानवीय व्यापारों में एकता और समता की अनुभूति। इसी दिव्य शिला पर छायावाद के भव्य भवन का निर्माण सम्भव है। इसके अभाव में, प्रकृति-प्रेम मात्र को व्यक्त करनेवाले भाव इस उच्च भूमि तक नहीं पहुँच सकते यद्यपि छायावाद में प्रकृति-प्रेम की स्थिति स्वतः रहती है। छायावादी कलाकार अपने प्राण की छाया विश्व में—प्रकृति में-देखता है किन्तु जब वही कवि उन सभी प्राणों के भीतर स्थित, उन सभी को एक सम्बन्ध-सूत्र में पिरोये और उनका संचालन करते हुये, अखण्ड और असीम रूप में, ज्ञात-सा, अज्ञात-सा; रहस्य में लिपटे किसी अनन्त शक्तिमान का दर्शन कर पाता है तो उसकी कृति के लिये रहस्यवाद की भूमिका प्रस्तुत हो जाती है और जब वह उस सत्ता में मधुर रूप की प्रतिष्ठा करके असीम प्रणय की प्राप्ति कर लेता है तो उसकी अनुभूतियों की कलापूर्ण अभिव्यक्ति में 'रहस्यवाद' निखर उठता है। यही छायावाद और रहस्यवाद का क्रम है। रहस्यवाद के अंक में छायावाद की स्थिति हो ही जाती है किन्तु छायावाद में रहस्यवाद को समा लेने की क्षमता नहीं है और न उसे इसकी आवश्यकता है क्यों कि वह अपने ही आनन्द में मस्त है।

यद्यपि छायावाद के मूल तत्व हमारे प्राचीन संस्कृत काव्यों में अपने वास्तविक रूप में प्राप्त हैं किन्तु फिर भी रीति-काल तक का हमारा हिन्दी साहित्य उसे ज्यों का त्यों न अपना सका। आधुनिक युग में भारती के पवित्र-पुत्र श्री 'प्रसाद' जी ने इस ओर लग्गा लगाया। उनकी तत्कालीन कृतियों को देख कर लोगों ने उनका कारण बँगला साहित्य अथवा पाश्चात्य काव्य-धारा में खोज निकाला किन्तु वे महा-

शय यह भूल गये कि उनके सम्मुख अपना वैभव लिये सम्पूर्ण देववाणी का वाङ्मय भी प्रस्तुत था जिसका अध्ययन उन्होंने बड़ी तन्मयता के साथ किया था। फिर भी इतना मानने में मुझे संकोच नहीं है कि उनके 'छायावादी' उद्गारों की अभिव्यंजना नूतन प्रतीकों के माध्यम से हुई है जिस पर अंशतः वाह्य प्रभाव अवश्य स्पष्ट है। उनके समय में ही उनके पथ पर कई कलाप्रेमी हृदय चल पड़े। 'पन्त' जी की प्रारंभिक कृतियों को हम इसी वाद में स्थान दे सकेंगे। 'निराला' जी और महादेवी के काव्यों में भी इसकी दिव्य झाँकी पाठकों को आनन्द-विभोर किये बिना नहीं रहती। इन उच्च कलाकारों के अतिरिक्त और भी कई साहित्यकार हमारे साहित्य में हैं जिन्हें छायावादी कहने में किसी को बाधा न होगी। किन्तु आपत्ति उनके बारे में अवश्य होती है जो अपने हृदय की वासना को छायावादी पावन प्रकृति-प्रेम का बाना पहनाकर व्यर्थ का भ्रम रच डालते हैं।

३

महादेवी का रहस्य-दर्शन

सुश्री महादेवी जी की प्रणयानुभूति का आलम्बन प्रियतम के रूप में वही अद्वैत-चिन्तन का ब्रह्म है और यतः अद्वैतवाद और उसकी चिन्तनधारा से इस पुस्तक के पाठक विज्ञ होंगे अतः यहाँ पर महादेवी जी के ब्रह्म, जीव तथा सृष्टि सम्बन्धी विचारों का स्पष्टीकरण मात्र अपेक्षित है। कवयित्री का मत है कि—सृष्टि के पूर्व जब न परिवर्तन था, न दिन-रात थे, और न प्रकाश था उस अगाध शून्य में व्याप्त उनका वह (प्रियतम) स्पन्दनहीन, निर्विकार, आदि-अन्त-विहीन, अपने मौन-शयन में अकेला था। किसी अभाव की मधुर पीड़ा से उसमें सृष्टि रचने की सुकुमार इच्छा अपने आप तरंगित हुई और स्वर्ण-लूता के समान उसने अपने भीतर से ही सत्व-रज-तम के तिनरंगे तारों को उगल कर अपना चित्रित संसार रचा :—

> 'स्वर्ण-लूता सी कब सुकुमार
> हुई उसमें इच्छा साकार ?
> उगल जिसने तिनरंगे तार
> बुन लिया अपना ही संसार'

और वह अपनी माया से लिपटा हुआ इन्द्रधनुष के समान स्वयं बदलता रहा, उसे न क्षण भर का विराम मिला और न विश्राम ही। क्योंकि उसे केवल बनने और मिटने की ही साध थी। जिस प्रकार सिन्धु की तप्त उसाँस (वाष्प) शून्य में (बादल बन कर) लहरों के समान क्षण मात्र नाच कर, घात-प्रतिघातों की चोट खाकर, पुनः उसी के पास लौट आती है; जैसे हृदय के मधुर भावों की भाँति पानी के बुलबुले किरणों के साथ क्रीड़ा करके पुनः जल में तिरोहित हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार यह, सुख-दुःख, हास-अश्रु में सना हुआ, संसार उसी अज्ञात प्रियतम से निकलकर, ठोकरें खाता खाता उसी में फिर समा जाता है—

> 'सिन्धु की जैसी तप्त उसाँस
> दिखा नभ में लहरों का लास
> घात—प्रतिघातों की खा चोट
> अश्रु बन फिर आ जाती लौट।'
> 'बुलबुले मृदु उर के से भाव
> रश्मियों से कर कर अपनाव,
> यथा हो जाते जलमय—प्राण
> उसी में आदि वही अवसान।'

पृथ्वी की जड़ता उर्वर बन कर असंख्य जीवनों की सृष्टि करती है और वे पुनः उसी में नवीन अंकुर उत्पन्न करने के निमित्त छिप जाया करते हैं। वैसे ही एक सृष्टि बनती है और फिर नवीन सृष्टि के लिये मिटती भी रहती है। इस प्रकार वह सर्वशक्तिमान निरन्तर जड़ से चेतन का बन्धन करता रहता है। उसी ने प्राणी के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के मुकुरों (पार्थिव रूपों) को सँवार कर इस प्रपंचात्मक संसार की कारा को मनभर सजाया। परन्तु वह क्रीड़ामय स्वयं

बन्दी बन उठा क्योंकि इन मुकुरों में पड़े सभी प्रतिबिम्बों का आधार वही है—वही इन पार्थिव रूपों में अविभक्त होता हुआ विभक्त सा प्रतीत होता है—

'विविध रंगों के मुकुर सँवार
रचा जिसने यह कारागार
बना क्या बन्दी वही अपार
अखिल प्रतिबिम्बों का आधार ?

इतना होने पर भी वह रहस्य-निधान निर्विकार और पूर्ण ही बना रहा, बन्दी होते हुये भी उसमें बन्धन का प्रभाव नहीं, वह अनासक्त—उदासीन—ही रहा। कनक और नीलम यानों पर चढ़ कर रात-दिन जिसके विशाल वक्ष पर दौड़ते रहते हैं, जिसमें असंख्य उडुगण जलते-बुझते हैं, पर्वत-से आकार वाले बादल जिसके अंक में पिघल कर भी जिसे किञ्चिन्मात्र चंचल नहीं कर पाते, विद्युत की ज्वाला और भयंकर घन गर्जन जिसमें एक कम्पन भी नहीं जगा पाते, जो अखिल परिवर्तनों का आधार है किन्तु स्वयं अपरिवर्तनशील और निर्विकार ही बना रहता है उसी आकाश के समान कवयित्री का वह विराट प्रियतम भी निर्विकार है, जिसमें अगणित कोमल संसार बनते-बिगड़ते रहते हैं। देखिये—

'वक्ष पर जिसके जल उडुगण
बुझा देते असंख्य जीवन
कनक औ' नीलम-यानों पर,
दौड़ते जिस पर निशि—वासर;
पिघल गिरि—से विशाल बादल,
न कर सकते जिसको चंचल
तड़ित् की ज्वाला घन—गर्जन,
जगा पाते न एक कम्पन,

उसी नभ सा क्या वह अविकार-
और परिवर्तन का आधार ?
पुलक से उठ जिस में सुकुमार
लीन होते असंख्य संसार ।'

उसके अंश मात्र में एक संसार की स्थिति है—'एकांशेन स्थितो जगत् ।' उसी की आभा का एक कण नभ में असंख्य दीपक जला देता है, दिन को कनक-राशि और चन्द्रमा को चाँदी का परिधान दे जाता है । युगों से उसी की करुणा का लघु बिन्दु ही विश्व को जीवन दान करता है । इसी लिये महादेवीजी ब्रह्म को संकेत करती हुई कहती हैं:-

'तेरी आभा का कण नभको,
देता अगणित दीपक दान;
दिन को कनक—राशि पहनाता,
विधु को चाँदी का परिधान;
करुणा का लघु बिन्दु युगों से,
भरता छलकाता नव घन ।'

वारीश और नभ का विस्तार उसी की महिमा है । उसकी सुषमा का लघु अंश बन में फूलों की राशि खिला देता है और उसके भ्रू—संचालन से पल में शत शत प्रलय-झंझा की सृष्टि हो उठती है। सारी सृष्टि उसके अनुशासन में है। देवता अपना अमर लोक उसके चरणों पर लुटा देते हैं, रवि शशि अपनी आभा, अपना राज्य, उसकी आराधना में अर्पण करते रहते हैं, उन्हीं के दिव्य चरणों पर अखिल सुषमा के साज लोटते हैं। बादल श्रद्धापूर्वक अपने मोती से, पावन, जल लेकर उनके पैर धो आता है और मारुत अपनी चिर-चंचलता में उसी शक्ति-मान की सेवा-साध छिपाये है। अरुणा के कोमल कपोलों पर मदिर लालिमा उसी की देन है, उसका सहास मुख अरुणोदय है। आकाश

के ज्योतिष्पुंजों पर भी उसकी माया की छाया है। विश्व का सब कुछ उसी का है। इसीलिये कवयित्री का चेतन गा उठता है :—

'अग जग उनका कण कण उनका'

और जड़ के पाश में बद्ध चेतन जीव? वह उसी काल-सीमा-हीन रहस्य-निधान का ही रूप है। उसे धूलि के कणों में बन्दी बनाकर वह अनोखा खेल रचता है। सिन्धु के बनते-बिगड़ते बीचि-बिलास के समान प्राणों की सृष्टि और नाश उसी अज्ञात में है। जिस प्रकार चन्द्रमा की विमल चाँदनी क्षण भर रज-कणों में खेल कर पुनः उसी में, उसकी इच्छानुसार, सिमट पड़ती है उसी प्रकार जीव भी उस 'ज्योति के असीम विस्तार' की किरण सा नृत्य करता हुआ उसी में छिप जाता है। महादेवी का प्राण स्वतः सोचता रहता है कि :—

'रज—कणों में खेलती
किस विरज विधु की चाँदनी मैं?'

जीव और ब्रह्म वस्तुतः दोनों एक हैं, उनका अन्तर भ्रम मात्र है। रश्मि और प्रकाश की भाँति दोनों अभिन्न हैं किन्तु जिस प्रकार बादल में छिपी बिजली चमक कर अपने भिन्न अस्तित्व का आभास दे जाती है, उसी प्रकार जीव भी ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है। सुनिये महादेवी का रहस्य-दर्शी कवि गाता है :—

मैं तुमसे हूँ एक, एक हैं
जैसे रश्मि प्रकाश,
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों
घन में तड़ित्-विलास।'

और यदि अज्ञात चित्र है तो जीव रेखा क्रम, यदि वह मधुर राग है तो जीव स्वरसंगम है। एक असीम है तो दूसरा, असीम होता हुआ भी, सीमा का भ्रम लिये है। ब्रह्म ज्योति का असीम विस्तार है और जीव

कोमल तारक है। जिस प्रकार ज्योति की रेखा-रूप-हीनता दीपक में, तारों में, साकार रहती है उसी प्रकार चेतन जीव में असीम चेतन साकार है :—

'तुम असीम विस्तार ज्योति के
मैं तारक सुकुमार
तेरी रेखा-रूप-हीनता
है जिसमें साकार।'

जीव-सृष्टि के बारे में महादेवी जी की धारणा है कि एक दिन सूनेपन में ब्रह्म ने प्राण को जीवन की वीणा चुपचाप दे दी और बदले में प्राण ने उसे अपने पवित्र प्रेम का शतदल भेंट किया। उसकी याद भी कवयित्री के प्राण को है :—

'मुझे उसकी है धुँधली याद,
बैठ जिस सूनेपन के कूल;
मुझे तुमने दी जीवन-बीन
प्रेम शतदल का मैंने फूल।'

फिर क्या था, उसी प्रेम-शतदल का मधु-सिक्त पराग और सौरभ का प्रथम भार उस प्रियतम के स्पर्श से चुपचाप जग में साकार हुआ और प्रियतम द्वारा प्राप्त जीवन-वीणा के तारों पर प्राण ने (चेतन ने) जब उँगली फेर कर झंकार छेड़ दी तो विश्व-प्रतिमा में जीवन का संचार हो उठा। प्रेम-शतदल के मधु से अगाध सिन्धु, पराग-रेणु से वसुधा, सौरभ से नभ और कम्पन से बयार की सृष्टि हुई। फिर धीरे-धीरे उस विश्व-प्रतिमा में संचरित विश्व-जीवन के भीतर घड़ियाँ, पल, निरन्तर बीतने लगे, उसके श्वासोच्छ्वास दिन-रात, प्रकाश और अन्धकार बने। उस अज्ञात ने उस प्रतिमा को हँसना सिखलाया—उसे सुख का साम्राज्य

दिया—किन्तु जीव ने प्रिय-विरह की वेदना में उसे रोने का अधिकार दे डाला। सुनिये कवयित्री का प्राण ब्रह्म से क्या कह रहा है :—

'उसे तुमने सिखलाया हास
पिन्हाये मैंने आँसू हार
दिया तुमने सुख का साम्राज्य
वेदना का मैंने अधिकार ।'

प्राण का जन्म ही वियोग हुआ। किसी अभाव के अनुभव से—कदाचित अपने सूनेपन से ऊबकर-उस बिराट ने पीड़ा की जो पहली उच्छ्वास छोड़ी उसी की संज्ञा जीव है जिसे विश्व-समीर चुरा लाया :—

'जन्म ही जिसको हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्वास
चुरा लाया जो विश्व—समीर
वही पीड़ा की पहली साँस ।'

प्रेम शतदल भेंट कर के जीव ने जो जीवन-वीणा ली वह आदान-प्रदान, जो कभी वरदान था, अब अभिशाप बन उठा। महादेवी का चेतन, जो मानव चेतन का प्रतिनिधित्व करता है, अपनी वेदना में गुनगुनाता रहता है :—

'विरह का तम हो गया अपार
मुझे अब वह आदान—प्रदान;
बन गया है देखो अभिशाप,
जिसे तुम कहते थे वरदान ।'

उस निर्मम के एक स्पन्दन में आत्मा के लिये चकवी की करुण विरह-यामिनी बन उठी। उसने, तम से अभिसार करने के लिये, जीव को छोड़ दिया है और यह जीव तब से, उसी विरह-वेदना में, निरुपाय सा, तड़पता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अद्वैतवाद के मूल सिद्धान्त महादेवी की अनुभूतियों (रहस्याराधना) के मूल में हैं। उन्होंने ब्रह्म जीव और विश्व को जिस रूप में देखा है वह अद्वैत सिद्धान्त से परे नहीं है। इनके रहस्य-निधान प्रियतम वही निराकार, निर्गुण, अनासक्त पूर्ण, सृष्टि का उपक्रम और उपसंहार हैं जिसे ज्ञानियों ने 'नेति नेति' कह कर छोड़ दिया है।

किन्तु कल्पना में मधुर व्यक्तित्व लेकर वही शक्तिमान मानव हृदय की अनुराग-प्यास को बुझाता रहता है। 'हद छाँड़ि बेहद' जाने वाले निर्गुण के आराधक, ज्ञान मार्ग के अमर बटोही, कबीर का 'पीव' वही था और ये थे उसकी सुहागभरी 'बहुरिया'। तभी तो कबीर ने कहा था :—

'राम मेरा पीव मैं राम की बहुरिया।'

उससे मिलने के लिये-सासुर जाने के लिये-कबीर व्याकुल हो उठे थे-'चूनरी' पहन कर तैयार थे। यही नहीं, अपितु 'साईं' के साथ 'सेज' पर सोने के लिये उनकी आँखें भी एक दिन अलसा उठीं और उन्हें कहना पड़ा :—

'हूँ अँखिया अलसानी हो पिय सेज चलो'।

महादेवी जी ने भी उसी विरही कबीर के समान अपने अज्ञात से, किन्तु कुछ कुछ ज्ञातसे, प्रियतम को मधुर रूप दिया है। उसे पार्थिव रूप में न देखकर सूक्ष्म सौन्दर्य का ही उन्होंने दर्शन किया है। इधर यह मतवाली हैं, उधर इनका प्रिय भी अलबेला है-अनुपम सौन्दर्य शाली है। देखिये—

'मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है' :-

वह चिरन्तन है और यह क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी हैं :-

'प्रिय चिरन्तन है सजनि,

क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं'

उसकी मधुर चितवन का मधुर निर्झर इनके मानस-सर में मधुर रस भर देता है। उसकी स्मित से किरणें झरती हैं जिसे प्रेयसी के दृग-जलजात पीते रहते हैं। क्या ही मधुर स्थिति है:-

जब 'उनकी चितवन का निर्झर,
भर देता मधु से मानस-सर,
स्मित से झरतीं किरणें झरझर
पीते दृग—जलजात।'

वह नटखट अपनी प्रेयसी से आँख-मिचौनी का खेल रचता है। मेघों में अपनी विद्युत सी छवि दिखा कर वह इसी लिये छिप जाता है कि प्रेयसी अपनी आँखों की चित्रपटी पर उसे आँक न पाये। शशि-किरणों की उलझन में वे आभा बन कर खो जाते हैं जिससे उनकी प्रियतमा उन्हें कण कण में ढूँढे पर पहिचान न सके। अपनी-विरह-जन्य करुण कहानी महादेवी जी उन्हें न सुना सकें इसलिये वे सागर की धड़कन बन कर लहरों की थपकी में सोते रहते हैं। तारक-बालाओं की अपलक चितवन बन कर वे बार बार सम्मुख आते हैं जिससे प्रिया, उन्हें पकड़ना तो दूर रहा, छू भी न सके और अकुलाती रहे। कभी मानस में ही उच्छ्वासों के रूप में छिप जाते हैं जिससे अपनी साँसों में देखकर भी उन्हें जाने से प्रेयसी रोक नहीं पाती। उसकी स्मृति में भी वही छिपे बैठे हैं। हैरान विरहिणी सोचती है कि:

'वे स्मृति बनकर मानस में,
खटका करते हैं निशि-दिन,
उनकी इस निष्ठुरता को
जिसमें मैं भूल न जाऊँ।'

प्रिया को रिझाने के लिये प्रतिदिन प्रातःकाल वह बालारुण में मुस्करा देता है और दर्शन-जनित आनन्दातिरेक तथा न पाने की

विवशता से कवयित्री (फूलों पर पड़ी ओस के रूप में) रो पड़ती हैं। इस लुका-छिपी से उन्हें कभी कभी असह्य वेदना हो उठती है और वे पूछ पड़ती हैं:--

'क्यों यह निर्मम खेल सजनि!
उसने मुझसे खेला-सा है ?'

इस रहस्यमय प्रणय-व्यापार के दोनों पक्ष समान नहीं हैं। उभय सम हैं। यदि वह असीम अमर है तो महादेवी भी उसकी अमर सुहागिनी हैं। यदि उसमें अनन्त करुणा है तो इनमें असीम सूनापन है। फिर प्रेयसी अपने प्रियतम से किस प्रकार लघु है। कवयित्री का दावा है कि--'उनसे कैसे छोटा है मेरा यह भिक्षुक जीवन ?

उनमें अनन्त करुणा है, इसमें असीम सूनापन।'

यह है महादेवी के अज्ञात प्रियतम के सूक्ष्म, किन्तु सगुण-से, रूप की झाँकी। अद्वैत के ब्रह्म चिन्तन और भक्तों की सगुण भावना का आपत्तिरहित संयोग करने में महादेवी जी को साफल्य प्राप्त है। उनकी रहस्य-भावना और उसकी अनुभूतियों की वास्तविकता के लिये यह मधुर संयोग आवश्यक ही था।

४

विरह—साधना

महादेवी जी का विरह कुछ दिनों, कुछ वर्षों तथा कुछ जन्मों का ही विरह नहीं है, वह तो चिर पुरातन है और उसके अन्त का भी निश्चित ज्ञान किसी को नहीं है। जितना विराट उनका प्रियतम है उतना ही बड़ा उनका विरह-काल है। न जाने कितने युग हुये कि कवयित्री अपने प्रियतम से बिछुड़ गईं, उसके साथ खेलने का अवसर भी न लगा, और विरह आरम्भ हो गया-मनकी अरमानें मन में ही रह गईं-केवल तड़पना हाथ लगा। इसी चिर-संचित तड़पन ने आज मधुर कला में अपने को साकार बना डाला है। महादेवी का विरह इसी का मौन इतिहास है।

तब से आज तक उनके न जाने कितने, भावों के हार छिन्न होकर अन्तर्धान हुये हैं, बादल के समान उनके अगणित उच्छ्वास आकाश रूपी हृदय में उड़कर नष्ट हो चुके हैं। उनकी अभिलाषायें पीड़ा के साथ बिखरी पड़ी हैं, उनकी प्रणय-रागिनी, जो कभी अस्फुट थी आज उन्माद

बन कर छा गई है और उसकी प्रिय—मिलन की सभी साधनायें मौन हैं। उनके मिलन मानस कुंज को उजाड़ कर निर्मम प्रियतम ने उन्हें नीरव रोदन सौंप डाला और अब उनकी पिघलती आँखों का उपहार भी वह निष्ठुर स्वीकार नहीं करता। उनकी करुण-स्थिति का चित्र देखिये :-

'हमारा मानस—कुंज उजाड़
दे गया नीरव रोदन कौन !
नहीं क्या अब होगा स्वीकार
पिघलती आँखों का उपहार।'

'वियोगिनी की कितनी रातें बीत गईं।' कौन बता सकता है। प्रतिदिन निशा अपनी मोतियों को गिराकर सहानुभूतिपूर्वक उससे (विरहिणी से) पूछती रहती है कि तुम्हारे नेत्र किस निर्मोही की बाट देखते हैं—

'मेरी पलकों पर रातें
मोती बरसा कर सारे
कहतीं 'क्या देख रहे हैं
अविराम तुम्हारे तारे ?'

और वह इतना बेपीर और क्रीड़ा-प्रिय है कि अपनी तड़पती हुई प्रियतमा को अँधेरी रात में उस पार बुलाता है जब कि समुद्र गरज रहा है, घटा घिर आई है, और किनारा सूना है। यद्यपि मिलन की उत्सुकता अपनी चरम स्थिति में है किन्तु कठिनाई तो यह है कि पीड़ा के भार को उठाये, पथ के समस्त अंतरायों को पार करती हुई अनन्त के पास किस प्रकार पहुँचा जाय। वे उसी अनन्त से पूछती हैं।—

'लिये कैसे पीड़ा का भार
देव आऊँ अनन्त की ओर ?'

फिर भी वह निठुर करुणार्द्र नहीं होता है, अपितु उनकी हृदय-वीणा के बिखरे तारों को एकत्रित कर टूटे सुख-स्वप्नों की स्मृति देकर गाने को कहता है :—

'मेरी बिखरी वीणा के
एकत्रित कर तारों को
टूटे सुख के सपने दे
अब कहते हैं गाने को

किन्तु टूटे अरमानों वाली प्रेयसी के लिये तो संगीत वैसा ही करुण होगा जैसे मुरझाये फूलों का फीका मुस्काना अथवा गोधूली के अधर पर (जिसका वैभव अब समाप्त है) किरणों का बिखराना। वेदनाधिक्य के कारण तो उसके प्रति रोम से निरन्तर अग्नि और जल के निर्झर झरा करते हैं, (संसार से) विरक्ति और (प्रिय-मिलन की) आसक्ति उसके श्वासों में जगी रहती हैं :—

'मेरे प्रति रोमों से अविरत,
झरते हैं निर्झर और आग
करती विरक्ति आसक्ति प्यार
मेरे श्वासों में जाग जाग।'

नायिका का प्रिय है भी बहुत दूर, वहाँ तक जाने का मार्ग अनन्त और अनदेखा है और प्रति श्वास में, क्षण-क्षण में, पूर्व स्मृतियाँ भी, न जाने क्यों, मिटती जा रही हैं—

'वह प्रिय दूर, पन्थ अनदेखा
श्वास मिटाते स्मृति की रेखा।'

इस दयनीय दशा में तड़पती हुई प्रेयसी की आँसू की बूँद में असीम अवसाद छिपा है किन्तु उसमें उसने इस आशा से निष्फल सपनों को

घोल रखा है कि कदाचित् प्रिय-मिलन का शुभ अवसर प्राप्त हुआ तो उसके नेत्र प्रिय के हँसते हुये अधरों को देख कर अनमोल हो उठेंगे—

'निराली सी आँसू की बूँद
छिपा जिसमें असीम अवसाद'

× × ×

'इस आशा से मैं उसमें
बैठी हूँ निष्फल सपने घोल
कभी तुम्हारे सस्मित अधरों—
को छू वे होंगे अनमोल।'

किन्तु मिलन के अन्तराय बढ़ते ही जा रहे हैं। प्रिय की स्मृति भी, जिसके बल पर प्रिया अपने अन्धकार-भरे जीवन में आगे बढ़ती रही है, अब विस्मृति म बदल जाने लगी। क्योंकि प्रेयसी को जैसे ही अपने चिर-बिछुड़े प्रिय का स्मरण होता है—ज्यों ही वह उनकी चिर-परिचित मुस्कान का, उनके अनुपम सौन्दर्य का, ध्यान करती है—उसी क्षण उसे विस्मृति आ घेरती है। अपनी इस करुण स्थिति में महादेवी जी कह पड़ती हैं :—

'मेरे मानस में उसकी स्मृति
भी तो विस्मृति बन आती'
'उसके नीरव मन्दिर में
काया भी छाया हो जाती'

फिर भी निष्ठुर प्रिय को मधुर उलाहना, जो प्रेम की एक विभूति है, देती हुई कवयित्री जी कहती हैं कि यदि कहीं इसी निष्ठुर खेल में मेरा जीवन दीपक बुझ गया तो मुझे अपनी चिन्ता नहीं है, किन्तु चिन्ता इस बात की है कि पीड़ा का राज्य, जो तुमने मुझे दे रखा है, अँधेरा हो जायगा। मेरे बुझने पर कौन तुम्हें जल जल कर प्रकाश देगा

'चिन्ता क्या है हे निर्मम !
बुझ जाये दीपक मेरा
हो जायेगा तेरा ही
पीड़ा का राज्य अँधेरा ।'

मतवाले मेघ, रजनी के श्याम कपोलों पर ढरकीले श्रम के कण, 'फूलों की मीठी चितवन, नभ के जग मग जलने वाले दीप, सन्ध्या के पीले मुख पर किरणों की फुलझड़ियाँ, मादक मकरन्द से पूर्ण विधु की चाँदी की थाली, आदि अपनी विलक्षण सौन्दर्य-सनी विभूतियाँ लेकर जब आप फिर कभी आयेंगे और उन्हें देखकर किसी के कोमल हृदय में मिलन-पीड़ा न उठेगी (क्योंकि प्रेयसी तो रहेगी ही नहीं) तब तुम निराश होकर—

'भिक्षुक से फिर जावोगे
जब लेकर यह अपना धन
करुणामय तब समझोगे
इन प्राणों का महँगापन ।'

तुम इतने निर्मम इतने छलनामय हो कि मेरे मन में छिप कर भी अरुणा के कपोलों पर, अपने अधर-स्पर्श से, गुलाल छिड़क देते हो और सागर की मन्थर हिलोर का चित्त चुराकर उसे अपने पास बुलाते रहते हो। मेरे प्रति तुम्हारा यह निष्ठुर व्यापार क्यों—तुम मुझे इधर-उधर भटकाते क्यों हो ?'

फिर भी प्रेयसी को अटल विश्वास है कि वह अपने प्रिय से मिल कर ही रहेगी। प्रेम की परिपक्वता और पवित्रता में प्रिय-मिलन का निश्चल विश्वास अनिवार्य है। सच्चा प्रेम अपने प्रिय को पाकर ही रहता है। 'जापर जाकर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलइ न कछु सन्देहू ।' गुप्त जी के भरत को भी विश्वास था कि—

'रोक सकेगा कौन भरत को, अपने प्रभु को पाने से ?'
टोक सकेगा रामचन्द्र को कौन अयोध्या आने से ?'

उसी प्रकार मिलन-पथ में चाहे असंख्य कठिनाइयाँ हों, घना अन्धकार हो, किन्तु कवयित्री को प्रिय से मिलने में कोई रोक नहीं सकता। वे कहती हैं :—

'अवलित परिवर्तन की डोर
खींचती हमें इष्ट की ओर'

किन्तु महादेवी का मिलन-विश्वास निष्क्रिय न होकर सक्रिय है। विराट से मिलने के लिये वियोगिनी आग से खेलेगी, अपने कोमल प्राण में असीम पीड़ा बाँध कर प्रिय को चकित कर देगी। अपनी साधना में सजग उसके चेतन को पथ के शूल प्रिय होंगे, दुःख में आनन्द मिलेगा और प्रिय को अन्त में उससे मिलना पड़ेगा। अपने निस्सीम प्रिय का आवाहन करती हुई वे कहती हैं :-

'लघु प्राणों के कोने में
खोई असीम पीड़ा देखो
आओ हे निस्सीम! आज
इस रज-कण की महिमा देखो।'

इस अनोखे अनुष्ठान के लिये, प्रिया अपनी ऐकान्तिक विरह-स्थिति में सजग हो कर विश्व की रँगरेलियों से नाता तोड़ लेती है। नवल फूलों के कोमल अंगों को छूने वाले और लजीली लतिकाओं का मधुर आलिंगन कर मदिर सौरभ में सने हुए मत्त समीर को अपने विरह दग्ध जीवन के एकान्त में आने से उसने रोक दिया है। लालसा में चूर, अपने क्षणिक यौवन पर भूल कर साथ में भौंरों की भीर लिये, विलासी उपवन के फूल में अब उसके लिये आकर्षण न रहा। संसार की सुषमा

से उसे क्या काम? उसे अब एकान्त में तप कर प्रिय की आराधना ही इष्ट है। उसकी प्रार्थना है :--

'निर्जनता के किसी अँधेरे
कोने में छिपकर चुपचाप
स्वप्नलोक की अमर कहानी
कहता सुनता अपने आप।

किसी अपरिचित डाली से
गिरकर जो नीरस बन का फूल
फिर पथ में बिछकर आँखों में
चुपके से भर लेता धूल।

उसी सुमन सा पल भर हँस कर
सूने में हो छिन्न मलीन
झर जाने दो जीवन-माली
मुझको रहकर परिचय हीन।'

दुःख झेलते झेलते एक ऐसी स्थिति स्वयं आ जाती है जब मानव दुःख की भीषणता पर हँस पड़ता है—दुःख में आनन्द खोज लेता है। विरह-दग्धा महादेवी के लिये 'विरह की घड़ियाँ' 'मधुर मधु की यामिनी' सी हो गई। विरह-जनित सारा क्रन्दन, सारा बिषाद संयम के भीतर बँधा है, अनुभूतियों में पहली जैसी हलचल नहीं, अपितु अनोखा गाम्भीर्य है, उनकी आहें ओठों की स्मित के आवरण में लिपटी हैं क्यों कि अन्तरायों को, बिना आँसू गिराये, हँसते-हँसते, झेलना प्रेम की गम्भीरता का परिचायक है। सूफियों के तड़पते आशिक भी अपने वेदनाश्रुओं को पीते रहते हैं, उनके 'बुलबुल' को चमन में आँसू बहाना मना है। हृदय की चोटों से ही प्रेमी अपना श्रृंगार करते हैं, फिर उनके

कारण आँसू कैसा ? हमारी कवयित्री का सर्वस्व इन्हीं प्रेम-पथ की चोटों में ही छिपा है। उनका कहना है :—

'मेरी आहें सोती हैं
इन ओठों की ओटों में.
मेरा सर्वस्व छिपा है
इन दीवानी चोटों में।'

वह अपने सूनेपन की मतवाली रानी हैं जो अपने ही प्राणों का दीपक जला कर दीवाली रचा करती हैं। देखिये महादेवी जी क्या कहती हैं—

'अपने इस सूनेपन की
मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों का दीप जलाकर
करती रहती दीवाली।'

उसने अपनी ऐकान्तिक रहस्य-आराधना में अपने प्राणों की हलचल (कम्पन) को सुला दिया है, उसकी आँखें, जो कभी आँधी बरसाती थीं, अब निस्पन्द पड़ी हैं। क्योंकि उनका प्रिय निशीथ की नीरवता में चुपचाप आता है, अन्धकार के परदे में ही वह 'छलना मय' आता है, । यही कारण है कि उन्हें अपने जीवन में तम का (विषाद का) संग्रह प्रिय है। नभ के जगमगाते तारों से (अभिलाषाओं से) उनकी प्रार्थना है:—

'करुणामय को भाता है
तम के परदे में आना
हे नभ की दिपावलियों !
तुम पल भर को बुझ जाना'

इस प्रकार विराट प्रिय की विरहिणी प्रियाने अपने हृदय के स्वर्ण—पिंजर में प्रलय का वात बाँध रखा है। दीपक के समान जलती

शिखा (वेदना) उसका ताज है, चिनगरियाँ (टीसें) उसका अनुपम श्रृंगार करती हैं, ज्वाला—उसका अक्षय कोष है और अंगार है रंगशाला:—

'ताज है जलती शिखा
चिनगारियाँ श्रृंगार माला
ज्वाल अक्षय कोष सी
अंगार मेरी रंगशाला ।'

उसके दृगों से झर कर अग्नि-कण भी शीतल हो उठते हैं और पिघलते उरसे निकल कर निःश्वास धूयें बन जाते हैं। उसके लिये अब ज्वाला में ही जीवन है। ज्वाला-शून्य दीपक राख का ढेर ही है। मोम की भाँति घुल घुल कर विहँस-विहँस, बिखर-बिखर और सजल-सजल जलने का आदेश उसने अपने कोमल प्राणको दे रखा है। क्योंकि विरह की रात्रि में वह जल जल कर जितना ही क्षय होगा उतना ही वह रहस्य निधान (प्रभात) समीप आता जायगा। महादेवी जी अपने प्राण से कहती हैं :—

'मधुर मधुर मेरे दीपक जल'
'मृदुल मोम सा घुल रे मृदुतन'
'तू जल जल जितना होता क्षय
'वह समीप आता छलनामय'

(और जब प्रभात हो जायगा, मिलन-वेला आ जायगी तो)

'मधुर मिलन में मिट जाना तू
उसकी उज्वल स्मित में घुल 'खिल'

कवयित्री के प्राण-दीपक को यह पूछने की आवश्यकता नहीं है कि अभी कितनी रात्रि शेष है। उसका काम है मौन-जलना। मिलन

तो अपनी सुधि स्वयं लेगा। मिलन-व्याकुल प्राणसे वे कभी कभी कह पड़ती हैं :--

क्यों पूछता है शेष कितनी रात ?'

विश्व के अन्य दुःखी प्राणी विरही के प्रिय से बन जाते हैं' यह विरह की अनोखी विभूति है। अपने चितचोर छलिया गोपाल के विरह में बेचैन गोपिकाओं को 'पी-पी' रटने वाला पपीहा अपना सा लगा था जिसके चिर-जीवन की कामना उन सबोंने की। रजत किरणों से नेत्र पखार कर, अनोखे सौरभ का भार और मधु का छलकता कोष लिये इस पार एकाकी आनेवाले छोटे, प्रफुल्लित फूल से कवयित्री जी भी सहानुभूतिपूर्वक पूछती हैं:—

कौन वह है सम्मोहन राग
खींच लाया तुमको सुकुमार।
तुम्हें भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार ?'

(अपने सौरभ की हाट लगाकर तुम जिसकी राह देख रहे हो वह बड़ा निर्मोही है, छलिया है।) और—

'जानते हो यह अभिनव प्यार
किसी दिन होगा कारागार ?'

विरह-सन्तप्त कवयित्री सहानुभूति के कारण ही अरुणा से अपना घूँघट न खोलने की प्रार्थना करती हैं (क्योंकि उसका मुख देखते ही बिना वृन्त के (बिना आश्रय के) शून्य में (महादेवी जी के समान) खिले और आँसू बरसाते हुये हँसने वाले तारों के फूल नष्ट हो जायँगे) :—

'मत अरुण घूँघट खोल री !
वृन्त बिन नभ में खिले जो
अश्रु बरसाते हँसे जो

तारकों के वे सुमन
मत चयन कर अनमोल री !'

विरह में पूर्व स्मृतियाँ, मिलन-सुख के स्मरण, अनिवार्य हैं और उनके कारण वेदना और भी गहरी हो जाती हैं। इन्हीं स्मृतियों से विरही व्याकुल रहता है। मथुरा में रत्न-खचित राज-सिंहासन पर आसीन, अपनी पटरानियों के हाव-भाव में क्रीड़ा करने वाले कृष्ण भी अपने सखा ऊधव से कहा करते थे :—

'ऊधव ! मोंहि ब्रज विसरत नाहीं।'

विप्रलम्भ की अखिल वेदना को मौन झेलने वाली महादेवी के मानस में भी पूर्व-स्मृतियाँ जग जाया करती हैं जिसके कारण किसी का अभाव साकार हो कर 'विस्मृति' को भंग कर देता है। उनके सम्मुख यह समस्या बड़ी जटिल है और वे कहती हैं :—

'कहीं से आई हूँ कुछ भूल।
कसक कसक उठती सुधि किसकी ?
रुकती सी गति क्यों जीवन की ?
क्यों अभाव छाये लेता है
विस्मृति-सरिता के कूल।'

अन्यथा, विस्मृति के खुमार में वे अपनी प्रत्यक्ष पीड़ा को भूलकर आनन्द लेती रहती हैं। उनके लिये सौ सौ निर्वाणों से एक विस्मृति अच्छी है। उसके अंक में उनका छली प्रिय पास रहता है, विरह का अन्त और मिलन का सुख उसी में है। कवयित्री के विचार से—

'विस्मृति के चरणों पर आकर
लोटेंगे सौ सौ निर्वाण'
(क्योंकि) 'अपने जर्जर अंचल में
भरकर सपनों की माया

इन थके हुये प्राणों पर
छाई विस्मृति की छाया।'

दार्शनिकों का मत है कि सुख-दुःख मन की भ्रान्ति है। उनकी स्थिति वास्तविक नहीं है। अतः उनका निराकरण भी मानसिक ही हो सकता है। मन भूल जाये कि उसे दुःख है, बस यही दुःख का अन्त है। विरह-वेदना का निराकरण मन की इसी उपेक्षा भरी स्थिति में है। भौतिक विरह को मानस के सूक्ष्म-लोक में मिलन बनाकर, उसमें प्रिय का मधुर दर्शन किया जा सकता है। इस स्थिति में मिलन और विरह दोनों की अनुभूतियाँ होती रहती हैं। विस्मृति में वह मिलन-सुख पाता है और जाग्रति में विरह-वेदना। एक के अभाव मे दूसरे का अनस्तित्व है, यदि विरह नहीं रहा तो फिर मिलन का आनन्द कैसा? इसी लिये प्रेमियों को जितना आनन्द इन्तजार में आता है, प्रिय से दूर रह कर उसके लिये तरसने में आता है, उतना मिलन में नहीं, भक्तों को भेद-भक्ति में जो सुख और शान्ति है वह भगवान के नित्य-गोलोक-वास के ऐश्वर्य-भोग में नहीं। मुक्ति का निरादर करके भक्त भेद-भक्ति में आनन्द लेता है। इष्ट अपनी अप्राप्ति में ही अनमोल होता है। इसी रहस्य के उद्घाटन में 'पन्त' का कवि गाता है—'अलभ है इष्ट अतः अनमोल।' सूफी भी माशूक की जुदाई में ही मज़ा ले ले कर तड़पते रहते हैं। वही मज़ा महादेवी जी को प्राप्त है। उन्हें भी प्रिय का साक्षात् मिलन नहीं चाहिये। वे अपने विरह के चिरत्व की प्रार्थना करती हैं—

'वर देते हो तो कर दो ना
चिर आँख-मिचौनी यह अपनी'

मिलन में चिर-तृप्ति है अतएव उसमें पुनः आनन्द की अनुभूति नहीं। कवयित्री को शंका है कि प्रिय-मिलन उनकी सत्ता को (भिन्नत्व-

का भ्रम लपेटे चेतन को) अपने में मिला कर उसका अस्तित्व ठीक वैसे ही समाप्त कर देगा जैसे अग्नि का स्पर्श कपूर को। वे अपने प्रिय से, इसीलिये, चिर-विरह-प्रियता का कारण स्पष्ट करती हुई कहती हैं :—

'वह सुनहला हास तेरा
अंक भर घनसार सा
उड़ जायगा अस्तित्व मेरा ?

× × ×

(और) 'मिलन मन्दिर में उठा दूँ
सुमुख से जो सजल-गुण्ठन
मैं मिटूँ प्रिय में मिटा ज्यों
तप्त सिकता में सलिल कण'

अतः अपने अनुराग भरे अस्तित्व को मिटा कर अभिमानिनी प्रिया अपने प्रिय से किस प्रकार मिले ? अपनी मिलन-अभिलाषा को संकेत करती हुई वह कहती हैं :—

'सजनि, मधुर निजत्व दे कैसे मिटूं अभिमानिनी मैं ?'

'महादेवी को अपने व्यक्तित्व के चिरत्व की कामना क्यों है' इसके उत्तर में उन्हीं का एक और संगीत सुनिये :—

'कम्पित कम्पित,
पुलकित पुलकित,
परछाईं मेरी से चित्रित,
रहने दो रज का मंजु मुकुर
इस बिन श्रृंगार-सदन सूना।'

(क्यों कि इस शरीर के बिना प्रियतम की सुधि-ही नहीं आयेगी जिसके बिना 'जीवन का क्षण क्षण सूना रहेगा।')

'सपने औ' स्मित
जिसमें अंकित,

सुख दुख के डोरों से निर्मित
अपनेपन की अवगुण्ठन बिन
मेरा अपलक आनन सूना
तेरी सुधि बिन क्षण क्षण सूना।'
जिनका चुम्बन,
चौंकाता मन,
बेसुध पन में भरता जीवन,
भूलों शूलों बिन नूतन,
उर का कुसुमित उपवन सूना।
तेरी सुधि बिन क्षण क्षण सूना।
दृग-पुलिनों पर,
हिम से मृदुतर,
करुणा की लहरों में बहकर
जो आ जाते मोती, उन बिन,
नव-निधियोंमय जीवन सूना।
तेरी सुधि बिन क्षण-क्षण सूना।
जिसका रोदन,
जिसकी किलकन,
मुखरित कर देते सूनापन।
इन मिलन-विरह-शिशुओं के बिन
विस्तृत जग का आँगन सूना।'

उनकी अभिलाषा है—अरमान है-कि वह दीप सी युग-युग जलती रहें किन्तु वह सुभग प्रिय इतना वर दे कि जब कभी वह उनकी फूंक से बुझें तो क्षार ही उनका पता दे-एकदम उनके अस्तित्व का नाश न हो जाय— उनके आराध्य चिन्मय रहें और अनुरागिनी सदा मृण्मयी। देखिये महादेवीजी कहती हैं:-

'दीप सी युग युग जलूँ पर वह सुमन इतना बता दे
फूँक से उसकी बुझूँ तब क्षार ही मेरा पता दे'
वह रहे आराध्य चिन्मय
मृण्मयी अनुरागिनी मैं'

अब उन्हें प्रियके वरदानों की आवश्यकता ही न रही। जब कोई दुःख नहीं तो फिर उससे मुक्ति पानेके लिये वरदान-याचना क्यों। जिसे हृदय बिंधवाने में आनन्द मिले, उसके लिये संसार में कौन वस्तु या व्यापार प्रतिकूल हो सकेगा। जिसने इसी विश्वमें उस अज्ञात का दर्शन किया हो, उसे फिर उस पार जा दर्शन करनेकी क्या आवश्यकता अपने निष्ठुर प्रिय को चैलेंज देती हुई महादेवी जी कहतीं हैं--

'देव अब वरदान कैसा।
बेध दो मेरा हृदय माला बनूँ प्रतिकूल क्या है।
मैं तुम्हें पहचान लूँ इस कूल तो उस कूल क्या है ?'

बात है भी ठीक कवयित्री के विरह का क्षण-क्षण मधुर सपनों से पूर्ण है; विस्मृति-अंक में उसने एक अनोखा संसार बसा रखा है जो अपनी मादकता में असीम है, उसने अपनी लघुता में असीम विषाद और अनन्त-प्रेम को विचित्र ढंग से बाँध रखा , युग युग से अपने निर्मम का पता लगाने में वह विश्वके कण-कण को पहचान कर 'जग के नीरव रसाल' पर 'कोयल सी' कूकती रही हैं। क्या इस अनोखे अस्तित्व को वह छोड़ दें ?, नहीं।'

'क्योंकि प्रतिदान में वह निठुर ऐसा मधुर लोक दे भी तो नहीं सकता। उसके अमर-लोक के मुस्काते फूलों को मुरझाना नहीं आता, तारों के दीपक बुझना जानते ही नहीं, न तो प्राणों में बेसुध पीड़ा है, वेदना और अवसान (जो कवयित्री को प्राण से भी प्यारे हैं) नहीं, वसन्त की श्री भी अनन्त। उसके लोकने न जलने की रीति जानी और न उसे मिटने

का विलक्षण स्वाद ही मिला। इसलिये विरह की मधुरिमा में बेसुध कवयित्री जी अपने अज्ञात प्रिय से पूछती हैं —

'छीन सब मीठे क्षणों को
इन अथक अन्वेषणों को
आज लघुता ले मुझे
दोगे निठुर प्रतिदान कैसा?'

× × ×

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार?
रहने दो हे देव! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार

वेदना और आँसुओं के कई युग के साहचर्य ने उनके प्रति महादेवी के हृदय में ममता उत्पन्न कर दी है और स्वयं मिट मिट कर संसार का कल्याण करने की अभिलाषा मे वह चाहती हैं कि—

'मैं भरी बदली रहूँ
चिर मुक्ति का सम्मान कैसा?'

और यदि मुक्ति आवे भी तो बन्धनों की कामना लेकर ही —

'आज वर दो मुक्ति आवे बन्धनों की कामना ले'

महादेवी का प्राण (जड़ता के आवरण में लिपटा मानव-चेतन) चिर बटोही है, वह युग-युगान्तर से अपनी यात्रा में अग्रसर है। अपने तम-मय पथ में उसे बिछुड़े प्रिय की छाया (आभास) मिल जाती है जिससे पुनः वह अपने अन्धकार—भरे जीवन में सुधि का दीपक जलाकर अपने पथ पर घूमा करता है। उसकी रूप-रेखा क्षण-क्षण नवीन रहती है। मुक्ति देकर उसकी यात्रा को बन्द कर देना एक प्रकार से उसे पंगु बना

देना है। भला चिर बटोही पंगुता लेकर क्या करेगा ? देखिये कवयित्री कहती हैं —

'चिर बटोही मैं, मुझे
चिर-पंगुता का दान कैसा।'

इस प्रकार विस्मृति में मिलन और जागृति में विरह दोनों महादेवी जी को इष्ट है, वे चाहती हैं—

'चिर मिलन-विरह-पुलिनों की
सरिता हो मेरा जीवन
प्रतिपल होता रहता हो
युग कूलों का आलिंगन'

(और) 'गूँथे विषाद के मोती
चाँदी सी स्मित के डोरे
हों मेरे लक्ष्य क्षितिज के
आलोक-तिमिर दो छोरें।'

किन्तु प्रश्न उठता है कि क्या इसी मिलन-विरह के आनन्द में विरहिणी अपने प्रियतम के मिलन की अभिलाषा को सदा दबाये रहे ? क्या उसके कोमल प्राण में प्रिय के साक्षात्कार की उत्सुकता कभी भी करवट न ले ? मिलन-सुख इस विरहानन्द का अतिक्रमण करके प्रेयसी को ललचाये ? यह सम्भव नहीं कि वियोगिनी इस विरह-व्यथा के भार को सदा सँभालती ही रहे। उसे मिलन के लिये व्याकुल होना ही पड़ेगा। रहस्यदर्शी के प्रेम की तीन अवस्थायें अनिवार्य हैं। इसकी प्रारम्भिक स्थिति तब होती है जब वह अज्ञात-प्रिय के साथ प्रणय सम्बन्ध स्थापित करने का उपक्रम करता है, उस स्थिति में नूतन वादक की भाँति वह अपनी हृदय-वीणा के तारों पर धीरे-धीरे अस्फुट रागिनी निकालने का अभ्यास करता है। दूसरी अवस्था में वह प्रणय में पूरा

अभ्यस्त होकर उसका मधुर आनन्द उठाने लगता है, उसकी रागिनी अब अपने पूर्ण वैभव के साथ निकलती है जिसके बल,वह अपने प्रिय के साथ मनोरंजन करता रहता है : बाद में अपने और प्रिय के बीच पड़े झीने परदे को हटा कर, उसमें अपने को और अपने में उसे समा लेने के लिये उत्कट व्याकुलता प्रदर्शित करता है। उसके प्रणय-क्रीड़ा-अभ्यस्त हृदय में थकान आ जाती है। हमारी कवयित्री को भी इसी स्थिति में पहुँच कर कहना पड़ा, प्रियतम से मधुर वरदान माँगना पड़ा—

'अलसाई है विरह-यामिनी
पथ में लेकर सपने सुख दुख
आज सुला दो चिर निद्रा में
सुरभित कर इसके चल-कुन्तल'

वे अपनी चिर मिलन-यामिनी का आवाहन करती है :-

'आ मेरी चिर-मिलन यामिनी।'
× × ×
(क्योंकि) 'रजनि ! न मेरी उर कम्पन से
आज बजेगी विरह-रागिनी।'

उनका प्राण असीम तम में मिल कर सोजाने के लिये बेचैन है। उसकी साध है अपने प्राण-दीपक को बुझाकर शून्य में सदा के लिये सुला देने की। सुनिये उसका व्याकुल संगीत —

'इस असीम तम म मिलकर
मुझको पल भर सो जाने दो
बुझ जाने दो देव! आज
मेरा दीपक बुझ जाने दो।'

'मैं सजग चिर साधना ले' कहने वाले प्राण के नेत्र, जो निरन्तर किसी की प्रतीक्षा में उधरे ही रहते थे, आज झिप-झिप कर मानों कहने लग गये हैं कि हम यह लुका-छिपी का खेल नहीं खेलेंगे। देखिये :—

'झिप झिप आँखें कहती हैं
'यह कैसी है अनहोनी'?
हम और नहीं खेलेंगी
उनसे यह आँख मिचौनी'

× × ×

मिलनोत्सुकता में अब महादेवी जी का शरीर सिहर-सिहर उठता है, हृदय पुलकों से भर आता है। संकोच के साथ (प्रिय के स्पर्श से) खिलती हुई शेफाली को, हर सिंगार से झरते मधु-कण को, देखकर उनके नेत्र प्रिय-मिलन-कामना से भर-भर आते हैं। स्वप्न-सुमनों से अपने कोमल एवं सुन्दर शरीर को सजाकर, विरह का उपहार लिये, अगणित युगों की मिलन-प्यास का नेत्रों में अंजन लगाये, नूपरों की मदिर ध्वनि से मनोरम मिलन-गीत गाती वह अपने प्रिय तक पहुँचने का, उसके अंक में बैठकर उसमें घुल-खिल जाने का अनुपम प्रयत्न कर रही हैं। उनका 'प्राण' जिसे उन्होंने अबतक रहस्य-साधना के कठोर संयम में बाँध रखा, आज अपनी अनन्त विकलता को दबा न सका। इसी से कवयित्री जी कहती हैं :—

'फिर विकल हैं प्राण मेरे।'

× × ×

तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है?
जा रहे जिस पंथ से युग कल्प उसका छोर क्या है?
क्यों मुझे प्राचीर बन कर
आज मेरे श्वास घेरे।'

यद्यपि प्रिय और प्रेयसी का प्रणय-व्यापार-भरा विरही जीवन रंग-मय है, उसमें विचित्र क्रीड़ायें हैं, जो अपने आनन्द के सहित मिलन में नष्ट हो जायँगी, किन्तु महादेवी का हृदय तो कहता है :—

'रंगमय है देव दूरी
छू तुम्हें रह जायगी यह
चित्रमय क्रीड़ा अधूरी
दूर रह कर खेलना पर मन न मेरा मानता है।'

पंचभूतों के पिंजर में युग युग से बन्दी रहनेवाला महादेवीजी का प्राण-कीर अब अपनी मुक्ति चाहता है —

'कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो।'

उसके पवित्र चंचु को छूकर (आत्मरूप के दर्शन से पवित्र चेतन के स्पर्श से) पिंजर (शरीर) की तीलियाँ भी मुखरित हैं। अपने भीतर असीम वेदना का भार लिये जड़-पिंजर भी मौन है। यदि उसकी जड़ता में वह प्रिय बोल नहीं देगा तो उसका प्राण-कीर, जो कई युगों का बन्दी है, आज अपनी शिथिल कारा को लिये अनन्त के पास उड़ चलेगा :—

'अब अलस बन्दी युगों का—
ले उड़ेगा शिथिल कारा।'

क्योंकि अबतक अपने निष्ठुर प्रिय को मनाने के लिये, रिझाने के लिये, उसने कम प्रयत्न, कम शृंगार, नहीं किया। शशि के दर्पण में देख-देख कर उसने अपने तिमिर-केश को सुलझाया (ब्रह्म-ज्ञान से उसने अपने मोह को नष्ट किया) और अशेष किरणों (ज्ञानपूर्ण विचारों) में तारक-पारिजात (पवित्र भाव) बाँधकर अपने बालों में (तिमिराच्छन्न जीवन-में) गूँथा किन्तु अपने इस अभिनव शृंगार की विफलता पर उसे कहना पड़ा —

'क्यों आज रिझा पाया उसको
मेरा अभिनव शृंगार नहीं ?'

अपने विरह-व्यथित फीके अधर को स्मित से अरुण करके, चरणों में गति का जावक लगा, पलकों में स्वप्नों का अंजन लगाये और अश्रु-माला से सीमन्त सजाकर, प्रिय को मनाने के लिये उसने युग युग से स्पन्दन के बहाने प्रतिपल मनुहार भेजा था किन्तु वह निर्मोही आया नहीं। अपने आप प्रेयसी के उच्छ्वासों से निकल पड़ता था :—

'क्यों वह प्रिय आता पार नहीं?'

प्रिय तक पहुँचने के लिये उसने अथक प्रयत्न किया था। देखिये :—

'पल चले, जीवन चला पलकें चलीं स्पन्दन रही चल'
किन्तु चलता जा रहा मेरा क्षितिज भी दूर धूमिल'

तो क्या इसी प्रकार उसके कोमल साज, प्रिय को रिझाने के लिये किया गया श्रृंगार, योंही मलीन हो चले? महादेवी का प्रणयी हृदय बराबर पूछता रहा है :—

'क्या शिरीष-प्रसून से कुम्हलायेंगे ये साज मेरे।'

अतः प्रिय की निष्ठुरता देखकर, अपनी विरह-साधना पर भी प्रिय को दयार्द्र न होते देख, अन्त में उसने उस झिलमिल-झिलमिल विश्व-दर्पण को ही फोड़ डाला जिसमें उस प्रियतम ने अपने दो रूप कर डाला था, भूलों का एक संसार बसा रखा था। लीजिये कवयित्री का थका, किन्तु दार्शनिकता में सजग, प्राण गा रहा है :—

'रहे खेलते आँख मिचौनी
प्रिय! जिसके परदे में 'मैं' 'तुम'
टूट गया वह दर्पण निर्मम!
अपने दो आकार बनाने
दोनों का अभिसार दिखाने,
भूलों का संसार बसाने
जो झिलमिल झिलमिल सा तुमने

हँस हँस दे डाला था निरुपम !
टूट गया वह दर्पण निर्मम !'

उसने विश्व का रहस्य समझ लिया। उन्हें यह 'हास-अश्रु' वाला जग अस्तित्व हीन हो उठा और फिर प्रिय के छिपने का परदा ही उठ गया। अपनी चिर साधना में सजग, विरह की आराधना में महादेवी जी स्वयं आराध्यमय बन गईं। उनके 'अथक अन्वेषणों' वाले प्राण से निकली मधुर रागिनी सुनिये :—

'हो गई आराध्यमय मैं विरह की आराधना ले'
× × ×
'मधुर मुझको हो गये सब मधुर प्रिय की भावना ले'
× × ×
'तुम मुझमें प्रिय ! फिर परिचय क्या ?'
× × ×
'काया छाया में रहस्यमय
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?'

रहस्यवाद की यह चरम-स्थिति है। यह वही स्थिति है जिस तक पहुँच कर, दार्शनिक मानव ने 'मैं ही ब्रह्म हूँ' कहा था, प्रह्लाद ने कहा था 'तुममें मुझमें खड्ग खंभ में, जहँ देखो तहँ राम' और सरमद ने 'अनल-हक' कहा। इस दशा को प्राप्त, हमारी कवयित्री को भी अब विरह-अभिनय की आवश्यकता नहीं है, उसे प्रिय के पद-चिह्न मिल गये, जिन्हें अबतक वह खोजती रहीं। अपनी मिलन अभिलाषा से, ढाढ़स बँधाती हुई, महादेवी जी कहती हैं :—

'तिमिर में वे 'पद-चिह्न' मिले'
'सजनि ! प्रिय के 'पद-चिह्न' मिले'

अतः उनकी प्रतीक्षा समाप्त हुई, उनका खोज-खग आज बसेरा लेने चला :—

'आज मेरा खोज-खग गाता चला लेने बसेरा'

क्योंकि प्रिय-मिलन तो स्वयं आ रहा है, अब उसे खोजने की क्या आवश्यकता ? देखिये :—

'पुलक-पंखी विरह पर
चढ़ आ रहा है मिलन मेरा'

रहस्य-दर्शन की इस उच्च भूमि पर चढ़कर, तिमिर में 'दीपशिखा' सी, जलकर अब हमारी कवयित्री मिलन-प्रभात की सुधि में मौन हैं।

इस प्रकार कवयित्री की प्रणयानुभूति का संक्षिप्त परिचय देकर अब अन्त में इतना और भी कह देना मैं आवश्यक समझता हूँ कि *महादेवी जी की प्रणयानुभूति दार्शनिक कवि के अनुराग भरे हृदय की पवित्र कम्पन है। उसमें रहस्यवाद के क्रमिक विकास की अभिव्यक्ति विप्रलम्भ की सम्पूर्ण विभूतियों के साथ मुखरित है।* इनकी अनुभूतियों की दिव्यता तथा वास्तविकता के बारे में विस्तारपूर्वक विचार आगे किया गया है।

५
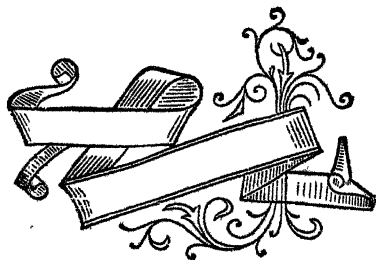
'महादेवी की अनुभूतियों में वास्तविकता है?'

अब तक यह स्पष्ट किया जा चुका है कि महादेवी जी की अनुभूतियों को उनके रूप किस किस प्रकार प्राप्त हो सके हैं और जीवन के किन अनुभवों तथा गूढ़ चिन्तनों के कारण उनमें किस प्रकार नवीनता, दिव्यता और सूक्ष्मता का समावेश हो सका। किन्तु अभी तक उन अनुभूतियों की झाँकी दिखाकर पाठकों को उससे परिचित कराना मात्र लक्ष्य रहा अतः उनकी दिव्यता और सत्यता को न मान कर, उनमें पार्थिव अतृप्ति का दर्शन करने वालों के तर्कों को सम्मुख रख कर, हिन्दी साहित्य में फैले भ्रम को, दूर करने का प्रयत्न नहीं किया गया जिसके बिना कवयित्री की कृतियों का अध्ययन पूर्ण न हो सकेगा। उनकी कृतियों का पाठक इस भ्रम के निवारण की तीव्र इच्छा रखता है, अतः अब इस दृष्टिकोण से विचार कर लेने के बाद ही उनकी कला-विभूति का दर्शन किया जायगा।

मानव-मस्तिष्क अपनी विलक्षणता में इतना असीम है कि उसका स्वप्न भी सत्य हो उठता है। जाग्रत विश्व से हमारा छाया लोक अभिन्न होता हुआ भी भिन्न-सा लगता है। उसकी सजीव-सी छाया-प्रतिमायें अपने अनस्तित्व के साथ ही इतनी प्रबल भी हैं कि उनके द्वारा प्राप्त हमारी अनुभूतियों में अपेक्षाकृत तन्मयता और तीव्रता अधिक रहती है। जितनी तीव्र वेदना हमें इस विलक्षण लोक के करुण दृश्यों से प्राप्त होती है उतनी जाग्रत जग में नहीं। जागरण में मस्तिष्क के विचार हमारी अनुभूतियों को सर्वथा स्वतन्त्र नहीं होने देते किन्तु स्वप्न में वैसी कोई रुकावट नहीं है और यही कारण है कि समाज के भय अथवा बुद्धि की सजगता से हमारी जिन वासनाओं की तृप्ति नहीं हो पाती वे स्वप्न में स्वतन्त्र होकर कभी कभी विचरा करती हैं। प्रत्यक्ष जग, किन्तु, उसे मिथ्या कहता है और सम्भव है कि जाग्रत संसार की स्थिति को मिथ्या कहने का अधिकार स्वप्न को भी प्राप्त हो। दार्शनिकों ने विश्व के अस्तित्व को मिथ्या कहा ही है। बात यह है कि जाग्रत जग की अपेक्षा स्वप्न-लोक की अल्प स्थिति हमें उसकी असत्यता का भान शीघ्र करा देती है, अन्यथा जिस प्रकार अल्प निद्रा के सत्य को जागरण झूठा सिद्ध कर देता है उसी प्रकार चिर-निद्रा (मृत्यु) जागरण के सत्य को भी स्वप्न की संज्ञा दे पाती है। अतः अंशतः सत्य हैं तो दोनों, नहीं दोनो मिथ्या हैं। मानना ही होगा कि यदि दिन का वैभव है जागरण तो रात्रि की विभूति है निद्रा जिसमें सुख-दुःख के सपनों की स्थिति है।

डाक्टर फ्रायड का मत है कि हमारी अतृप्त काम-वासनायें ही स्वप्न रचती हैं, बिना उनके स्वप्न की सृष्टि ही नहीं हो सकती। इस मत के बल पर उन्होंने कई रोगियों के भिन्न-भिन्न स्वप्नों की परीक्षा कर उनके रोगों का निराकरण किया। साहित्य में भी इसी मत के आधार पर

लोगों ने कवि-स्वप्नों को परखना आरम्भ किया और कवियों की कृतियों में छिपी पार्थिव अतृप्ति को ढूँढ़ निकालने का अथक प्रयत्न होने लगा। इतने से ही संतुष्ट न होकर कवियों के जीवन का अध्ययन भी किया गया और किसी न किसी घटना विशेष को उनके उद्‌गारों के मूल में ला बिठाया गया। इस कौशल का प्रभाव हमारे साहित्य पर भी पड़ा और कहने की आवश्यकता नहीं कि छायावादी और रहस्यवादी कवियों की अनुभूतियों को परखने में इस मत ने पर्याप्त गड़बड़ी प्रस्तुत की। स्पष्ट किया जा चुका है कि छायावाद प्रकृति-प्रेम से और रहस्यवाद मानव-चेतन तथा असीम चेतन के प्रणय-भाव से अनुप्राणित हैं। अतः फ्रायड के भक्तों ने उनके प्रेम-तत्व के मूल में अतृप्त काम वासना का दर्शन किया। 'प्रसाद के आँसू गिरे किसी के पार्थिव विरह में, उनका सौन्दर्य-चित्रण उनकी अतृप्त रूप-लिप्सा ही के कारण हैं; महादेवी की दुःखानुभूति और दिव्य-सी प्रणयानुभूतियाँ भौतिक धरातल पर ही खड़ी हैं केवल उन्हें कला-वैभव से सजाया गया है; उनका प्रत्यक्ष जीवन इस बात की सत्यता सिद्ध करता है,' आदि भ्रमपूर्ण उद्‌गारों ने साहित्य में व्यर्थ का बवंडर खड़ा कर दिया।

किन्तु, जाने या अनजाने, फ्रायड महोदय की इस महौषधि की परख दूर तक न हुई, अपितु उसे रामबाण समझ कर उसकी अव्यर्थता मान ली गई। फ्रायड का स्वप्न-सिद्धान्त अंशतः सत्य है; मैं उसे व्यापक नहीं मानता। क्योंकि हमारे सभी स्वप्न अतृप्ति के कारण ही नहीं होते। बहुत से स्वप्न हम ऐसे देखते हैं जिनका प्रत्यक्ष ज्ञान हमें रहता ही नहीं। ऐसे स्वप्नों को, असंज्ञान में दबी हुई, अतृप्त काम-वासनाओं के विलक्षण एवं सांकेतिक रूप मानने वाली बात में भी पूर्ण सत्य नहीं है। फिर भी, निद्रा-स्वप्नों और कवि-स्वप्नों में कुछ भी साम्य नहीं, एक पृथ्वी पर है तो दूसरा नभ में। इसलिये एकही नियम तथा एक

ही तुलापर उन दोनों को लादना उपहासास्पद होगा। कवि-मस्तिष्क अपनी जागृति में इस अनुपम संसार की सृष्टि करता है। दिवा-स्वप्नों के समान, किन्तु, कवि के स्वप्नों में असावधानी और विवेक-शैथिल्य नहीं रहता अपितु उसमें मस्तिष्क अपनी सजगता में पूर्ण रहता है; उसमें विश्व का कण-कण अपने गूढ़ तत्वों को प्रकट करता हुआ विश्व-दर्शन प्रस्तुत करता रहता है। इसीलिये कवि की कृति में प्रत्यक्ष सत्य से भिन्नता देखकर आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्योंकि वह जीवन की इकाई मात्र का दर्शन नहीं करता वरन् विश्व-जीवन की समष्टि का एक साथ दर्शन करके अखण्ड सत्य की झाँकी प्रस्तुत करता है। हम जो कुछ देखते हैं वही सत्य नहीं है, उसके अतिरिक्त कुछ और भी सत्य है। हम अपनी पार्थिव आखों से जब किसी को देखते हैं तो उसका सम्पूर्ण सत्य हमें प्रकट नहीं होता। कदाचित् इसी कारण हम रूपवान को सज्जन और कुरूप को दुर्जन, केवल प्रत्यक्ष दर्शन से, नहीं कह पाते। दो व्यक्ति जीवन भर साथ रह कर भी एक दूसरे का पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाते। और, विश्व तो इस प्रकार के न जाने कितने जीवनों से निर्मित है, अतः उसके सत्य की सीमा कोई कैसे खींच सकता है ?

कवि की कृति के पीछे वासना की स्थिति भी हो सकती है किन्तु उसे सभी के मूल में मानना ठीक नहीं होगा। किसी कवि का प्रत्यक्ष जीवन भले ही कुछ हो किन्तु उसकी अनुभूतियों को परखने में हमें सावधानी से काम लेना चाहिये। मेरे कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि कवि के जीवन का प्रभाव उसकी कृति पर नहीं पड़ता, वह तो पड़ कर ही रहेगा किन्तु उसके साथ जब विश्व-दर्शन का योग हो जाता है तो उसकी प्रमुखता समाप्त हो उठती है। अपनी स्त्री के सार-गर्भित व्यंग से तुलसी के हृदय में राम के प्रति अनुराग अवश्य उत्पन्न हुआ किन्तु यह कहना कि उनके राम-प्रेम की अनुभूतियों में उनकी अतृप्त वासना

ही जाग्रत है, अशोभनीय है। कवि विश्व-जीवन में अपने जीवन को मिला कर ही मोक्ष पाता है; उसकी अनुभूतियाँ क्षुद्र जीवन से ऊँचे उठ जाती हैं। इसलिये सभी कवियों और विशेषतया छायावादी-रहस्यवादी कलाकारों के बारे में विचार करते समय हमें इस मार्ग से बच कर चलना होगा नहीं तो कहीं का कहीं पहुँच कर, व्यर्थ में स्वयं तो भूल करेंगे ही, औरों को भी थका डालेंगे।

आधुनिक कलाकारों के बारे में फैले भ्रम के मूल में यद्यपि था यही 'फ्रायड' का स्वप्न-मत किन्तु उसका भण्डाफोड़ होते देख कर उसके भक्तों ने पैंतरा बदला और चिल्लाना आरम्भ किया कि रति-भाव के उद्रेक के लिये पार्थिव रूप आवश्यक है और वह भी मानवीय। हृदय द्रवणशील है अवश्य, किन्तु उसे प्रणय में गहरे उतारने के लिये एक मानव-हृदय चाहिये। प्राकृतिक सुषमा के प्रति हमारे हृदय में आकर्षण होता है, अनुराग भी सम्भव है, किन्तु प्रणय नहीं। नभ का शशि हमारे आह्लाद और कौतूहल का कारण है न कि हमारी हृत्तन्त्री के तारों को छूकर मधुर झंकार उत्पन्न करनेवाला। अज्ञात के प्रति प्रेम तो और भी दूर की बात है। अवश्य ही छायावादी-रहस्यवादी कवियों की कृतियों में उनकी अतृप्त वासनायें ही मुखरित हैं और इसीलिये उनकी अनुभूतियों में वास्तविकता नहीं है।

परन्तु यदि देखा जाय तो इन लोगों ने पुष्ट बात न कह कर रहस्यवाद और छायावाद के मूल तत्वों की अवहेलना ही की। मैंने पहले इसे बतलाया है कि छायावादी कवि सम्पूर्ण सृष्टि को एक अनोखे प्रेम लोक में बैठा कर उसके अंश-अंश में मधुर रूप का दर्शन करता हुआ अपनी धुन में असीम आनन्द पाता है। वासना का प्रवेश उसके लोक में उतना ही असम्भव और अवांछनीय है जितनी तम की गति

आलोक में। और, रहस्यवाद का प्राण है आत्मा का परमात्मा के साथ आध्यात्मिक चिन्तन-प्रौढ़ प्रणय जिसकी अभिव्यक्ति के लिये कोई साधन नहीं है। फिर जब उसकी अभिव्यक्ति आवश्यक हुई तो दाम्पत्य प्रेम को छोड़कर उसका प्रतीक और किस रूप का हो सकता था? दाम्पत्य प्रेम भी अपनी पार्थिवता के कारण उसके लिये उपयुक्त नहीं है किन्तु त्याग, तन्मयता, तीव्रता एवं आत्मविसर्जन आदि के कारण वह विश्व में प्रेम का मधुरतम आदर्श है। इसलिये, और केवल इसी लिये रहस्यवादियों ने अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिये दाम्पत्य प्रेम को ही रूपक स्वीकार किया। नहीं तो 'बहुरियों' से कोसों दूर रहने वाले ज्ञानी कबीर को 'राम' की 'बहुरिया' बनने की आवश्यकता? मैं पूछता हूँ कि क्या उनकी अनुभूतियाँ असत्य थीं, क्या कबीरदास जी अभिनय कर रहे थे? प्रतीक की स्थूलता को उसके द्वारा व्यक्त प्रेम की दिव्यता पर लादना या तो रहस्यवाद के तत्वों की अवहेलना होगी अथवा अपने बुद्धि-संकोच का डंका पीटना।

एक बात और, ज्ञात रूपवान को देख कर अज्ञात सौन्दर्यवान की साकार कल्पना में आनन्द पाने का मधुर अधिकार मानव को चिरकाल से प्राप्त है। मनुष्य के हृदय में सौन्दर्य की प्यास इतनी असीम है कि उसके कारण न तो आजतक वह सौन्दय की कोई परिभाषा निश्चित कर पाया और न अनन्त रूप के प्रति उसका अनुराग ही सन्तुष्ट हो सका। सुन्दर को देखकर अविरत सुन्दरतर देखने की प्रबल इच्छा लिये वह सुन्दरतम की कल्पना भी कर लेता है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी का 'पथिक' अपनी अतुल सौन्दर्यवाली स्त्री से, सुनिये, क्या कहता है :—

'देख अतुल सौन्दर्य तुम्हारा मग्न हुआ मन मेरा।
जिसने तुम्हें रचा वह होगा कैसा चारु चितेरा॥

उसे देखने की दृढ़ इच्छा प्रबल हो उठी मन में।
फिरा खोज में रूप-राशि के मैं निशि-दिन बन-बन में॥'

रूप-राशि की इसी चिर खोज ने मानव को रहस्यदर्शी होने के लिये विवश किया। क्योंकि उसके सम्मुख प्रश्न था कि वह अपनी इस प्यार-व्यथा के भार को किस पर रखे। अतः वह एक अनुपम सौन्दर्यवान् की कल्पना करके अपने अनुराग की असीम प्यास के लिये अनन्त सागर खोज कर उसमें 'घुल-खिल' जाने की भावना में अलौकिक हो उठा। उसके बारे में यह कह देना कि 'अज्ञात के प्रति प्रेम कैसा?' अविचार होगा। हम देखते हैं कि यौवन के मदिर उभार को रोकने में असमर्थ युवक जब किसी ऐसे ज्ञात-हृदय को नहीं पाता जिसमें वह अपने दिल का भार उड़ेल सके तो कल्पना में साकार किसी निराकार के ऊपर उस भार को रखकर कुछ देर तक विलक्षण स्वाद पा लेता है। पाणिग्रहण के पूर्व रूपसियों के प्रणय-भरे गीतों का भार किसी अज्ञात की कल्पना में ही मधुर बना रहता है।

रहस्यवाद और छायावाद के बारे में घपले का एक और कारण है जिसका स्पष्टीकरण हो जाना भी आवश्यक है। सभी का हृदय इतना कोमल नहीं होता कि वे सूक्ष्मतम अनुभूतियों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। विराट किन्तु मृदु हृदय की अस्थूल कम्पन उसी को ज्ञात हो सकती है जो उसी ढंग का हो। इस सत्य को न समझकर बौद्धिक युग का प्रत्येक हृदय सब किसी की परख करने में, स्वतन्त्र तो था ही, अब विशृंखल भी बना। किन्तु प्रत्येक हृदय की तुला को प्रमाण नहीं माना जा सकता। 'गाय' शब्द से यदि श्वेत गाय की ही रूप-रेखा शिशु के मस्तिष्क में जगे तो इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं हो सकता कि श्याम, पीत वर्णों वाली गायों की स्थिति है ही नहीं। उसी प्रकार यह कहना निरा भ्रम हो सकता है कि अमुक कलाकार की अनुभूतियाँ इसलिये असत्य

हैं कि उन्हें हमारे हृदय की प्रामाणिकता प्राप्त नहीं है। मैं यह नहीं मानता कि हम अपने हृदय की तुला को परखने के काम में न लावें किन्तु उसका उपयोग उसकी क्षमता और परीक्षणीय वस्तु के विचार से ही अच्छा होगा।

अतः कवि-स्वप्नों, उसकी अलौकिक कल्पनाओं, दार्शनिक कलाकारों की दिव्य अनुभूतियों और विश्व को एक असीम प्रेम में बाँधने की क्षमता रखने वाले हृदय के मधुर उद्‌गारों के प्रति शंका के लिये कोई ठोस कारण नहीं है। महादेवी जी उच्च कोटि की कलाकर्त्री हैं, उन्होंने अपने छोटे जीवन में असीम करुणा और अनन्त अनुराग भर कर अपने मानस के दिव्य लोक में एक अनुपम विश्व की सृष्टि कर डाली। इसलिये उनकी परीक्षा करते समय हमें उन सभी तर्कों से बचना होगा जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। और, यदि एक क्षण के लिये यह मान लिया जाय कि उनकी कृतियों के पीछे कोई पार्थिव प्रेरणा है, उनके गीत अतृप्त प्रणयवासना की छटपट से ही अनुप्राणित हैं, तो भी निष्पक्ष और सुहृदय पाठक इस सत्य की उपेक्षा न कर पायेगा कि उनकी अनुभूतियाँ, अपने स्थूल मूल में भी, दिव्य हो उठी हैं। पंक से उत्पन्न होकर पंकज अनासक्ति और दिव्यता का प्रतीक माना ही जाता है; उसके सौन्दर्य को उसी कीचड़ में ला फँसाना अपना मौख्य-प्रदर्शन नहीं तो और क्या हो सकता है?

महादेवी के बारे म आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं:—'इस वेदना को लेकर इन्होंने हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखी हैं जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है यह नहीं कहा जा सकता।' शुक्ल जी ने ठीक ही कहा, किन्तु उनके कथन का अर्थ भी लोगों ने अपनी रुचि के अनुसार लगा कर, महादेवी की अनुभूतियों को कल्पना की देन कहने के पक्ष में हिन्दी के उस अग्रगण्य आलोचक

को ला खड़ा किया और नकली रहस्यवादियों के प्रति कहे गये उनके कथनों का लम्बा चौड़ा उद्धरण प्रस्तुत किया। आचार्य शुक्ल जी रहस्यवाद की पवित्र आत्मा को पहचानते रहे और उसके प्रति श्रद्धालु थे। अपनी श्रद्धा के कारण ही, व्यर्थ में रहस्यवाद का भ्रम रचने वालों से वे कुढ़ते भी थे। महादेवी के बारे में जो उन्होंने सन्देहात्मक मत प्रकट किया उसका कारण है महादेवी की अनुभूतियों का अधिक लोकोत्तर हो उठना जिसकी व्यंजना शुक्ल जी के उपर्युक्त कथन में है।

एक क्षण के लिये माना कि आचार्य शुक्ल जी के मत से महादेवी की अनुभूतियों में वास्तविकता नहीं है। फिर, प्रश्न यह खड़ा होगा कि रहस्यवाद की परख-तुला क्या है; किस प्रकार उसकी अनुभूतियों को हम परखें। कबीर तथा मीरा की अनुभूतियों को वास्तविक और महादेवी की अनुभूतियों को काल्पनिक किस बल पर हम कह सकते हैं। शुक्ल जी ने उक्त मत प्रकट करते समय किसी परख-तुला को प्रस्तुत नहीं किया और न उनके बाद भी किसी ने उसकी ओर संकेत किया जिसके द्वारा हम उनके मतों की सत्यता मान सकें। कवियों को झूठा मानने वाले प्लेटो ने जो सिद्धान्त प्रस्तुत किया उसकी परीक्षा कर लेने के बाद हम उसके मत को भ्रम-पूर्ण मान लेते हैं। किन्तु रहस्यवादी के प्रति कहे गये कथनों की परीक्षा हम किस प्रकार करें।

मैंने आरम्भ में ही संकेत किया है कि रहस्यवाद में कल्पना के द्वारा अद्वैत-चिन्तन का निराकार सगुण बनाया जाता है और उसके साथ सारा प्रणय-व्यापार भाव-भरी कल्पना में होता है। परन्तु कल्पना का कार्य-क्षेत्र बस वहीं तक है जहाँ अज्ञात ज्ञात-सा, सगुण सा, होकर प्रणय के योग्य बन उठता है। उसके पश्चात रहस्यवाद को कल्पना की आवश्यकता नहीं है क्योंकि फिर तो हृदय अपने मधुर भावों को लेकर प्रणय के लिये आगे बढ़ता है और धीरे-धीरे उसकी अनुभूतियाँ दिव्य-

न्तर होती रहती हैं, हाँ इस भय से कि कहीं निरी भावनात्मक अभिव्यक्ति के कारण रहस्यवाद अपने दिव्य स्तर से उतर कर वास्तववाद के हेय धरातल पर न आ जाय, रहस्यवादी को अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिये कल्पना का आश्रय लेना ही पड़ेगा। सच्चे रहस्यवादी की अनुभूतियाँ काल्पनिक नहीं हो सकतीं; नक्कालों की बात मैं नहीं करता। महादेवी की कला इतनी ऊँची हो उठी है, उनकी कल्पनायें इतनी विलक्षण, किन्तु सुन्दर हैं, कि लोगों ने उनके कला-वैभव के कारण उनकी अनुभूतियों को भी कला के भीतर मान लिया। परन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो बात यह है नहीं। मैं मानता हूँ कि महादेवी ने कल्पना को अधिक महत्व दिया है, और कहीं कहीं उनकी कल्पनायें क्लिष्ट भी बन गई हैं, जिसके कारण उन्होंने अपने प्रत्येक गीत में कई रूप-चित्रों का एक साथ विचित्र विधान प्रस्तुत किया है; उनके प्रत्येक भाव तथा उनकी प्रत्येक अनुभूति की अभिव्यक्ति कला और कल्पना के द्वारा सँवार कर ही हुई है। उदाहरण लेते चलिये :—

'पिघलती आँखों के सन्देश
आँसुओं के वे पारावार
भग्न आशाओं के अवशेष
जली अभिलाषाओं के चार"

इस पद में आँसू के चार रूप-चित्रों का एक साथ विधान उनकी कल्पना की विभूति है। तनिक आँखों के वर्णन में कल्पना-शक्ति देख लीजिए:—

'तम ने इन पर अंजन से
बुन बुन कर चादर तानी
इन पर प्रभात ने फेरा
आकर सोने का पानी

इन पर सौरभ की साँसें
लुट लुट जातीं दीवानी
यह पानी में बैठी हैं
बन स्वप्न-लोक की रानी'

इस 'स्वप्न-लोक की रानी' के चित्र में महादेवी की कल्पना ने उनका इतिहास ही आँक दिया। और देखिये:—

'जिस दिन नीरव तारों से
बोलीं किरणों की अलकें
सो जाओ अलसाई हैं
सुकुमार तुम्हारी पलकें'

रश्मियों के द्वारा रात भर के जगे तारक को सुलाने की मधुर कल्पना करके महादेवी ने प्रभात के एक साधारण दृश्य को कितना सजीव बना दिया है, यह पाठक स्वयं समझें। कल्पना की कुछ और बानगी लेने के लिये कला सम्बन्धी प्रकरण देखिये क्योंकि इस स्थल पर तो मेरे कहने का इतना ही अभिप्राय रहा कि महादेवी की कल्पना अपने ढंग की निराली है; उसके द्वारा उन्होंने साधारण से साधारण परिचित को भी असाधारण बना डाला है; इनके प्रत्येक रूप-चित्र में कल्पना झाँकती रहती है। किन्तु यह कहना कि उनकी अनुभूतियों में भी वही कल्पना है, ठीक नहीं। उनकी अनुभूतियों में हृदय भरा है न कि उनका मस्तिष्क क्यों कि उनके पीड़ा-भरे, प्रणय-भरे, उद्‌गारों का प्रभाव हमारे हृदय पर होता है। कुछ उदाहरण लीजिये:—

'हृदय पर अंकित कर सुकुमार
तुम्हारी अवहेला की चोट
बिछाती हूँ पथ में करुणेश
छलकती आँखें हँसते ओठ'

प्रिय की निष्ठुरता से आँखों में आँसू भर कर प्रिय को प्रसन्न करने के लिये ओठों पर स्मित फैलाने वाली विरहिणी का चित्र हमारे हृदय पर अपना प्रभाव अंकित कर देता है ।

'इन आँखों ने देखी न राह कहीं, इन्हें धो गया नेह का नीर नहीं।
करती मिट जाने की साध कभी, इन प्राणों को मूक अधीर नहीं।'
अलि छोड़ी न जीवन की तरिणी, उस सागर में जहाँ तीर नहीं।
कभी देखा नहीं वह देश जहाँ, प्रिय से कम मादक पीर नहीं॥'

भौरों के प्रति कही गई इन पंक्तियों में हृदय की वही प्रेरणा, वही अनुभूति, साकार है जिसके कारण घनानन्द अपना मधुर संगीत अलापा करते थे। महादेवी के, प्रणय में तन्मय, हृदय का गीत सुनिये :—

'प्राण-पिक ! प्रिय नाम रे कह'

विरहिणी के लिये स्वप्न में भी प्रिय का मिलन क्षण भर का आनन्द दे जाता है और इसीलिये उन्हें ऐसे स्वप्नों की अभिलाषा स्वाभाविक है। कदाचित इसीलिये महादेवी भी गाती हैं :—

'तुम्हें बाँध पाती सपने में !
तो चिर जीवन-प्यास बुझा लेती उस क्षण अपने में।'

पपीहे के प्रति कहे गये कवयित्री के उद्गारों को पढ़कर उनकी अनुभूतियों की वास्तविकता परखिये :—

'वह कौन सा पी है पपीहा तेरा, जिसे बाँध हृदय में बसाता नहीं'

× × ×

'अब सीख ले मौन का मन्त्र नया, यह पी-पी घनों को सुहाता नहीं।'

× × ×

'उसको अपनी करुणा से भरा उर सागर क्यों दिखलाया नहीं;
संयोग वियोग की घाटियों में नव नेह में बाँध झुलाया नहीं;

संताप के संचित आँसुओं से नहला के उसे तू घुलाता नहीं;
अपने तम-श्यामल पाहुन को पुतली की निशा में सुलाता नहीं।'

और देखिये महादेवी की प्रतीक्षा भरी आँखों में उनकी अनुभूतियों की झाँकी :—

'सजग लखती थीं तेरी राह, सुला कर प्राणों का अवसाद,
पलक-प्यालों से पी पी देव, मधुर आसव सी तेरी याद।'

महादेवी के काव्य में कुछ स्थल तो ऐसे हैं जहाँ अनुभूतियों की तीव्रता, तन्मयता, गहराई और व्यापकता असीम हो उठी हैं; कोई भी हृदय उनके मार्मिक प्रभाव से बच नहीं सकता। हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ, ऐसी पीर अन्यत्र कम मिलेंगी। महादेवी के नारी हृदय ने नारी की चिर संचित वेदना एवं प्रणय भावना को मुखर कर डाला है। कुछ उदाहरण ले लीजिये :—

'क्या शिरीष-प्रसून से कुम्हलायेंगे ये साज मेरे'

इस उद्‌गार में पाठक समझें कितनी तीव्र मनुहार, कितना मार्मिक अनुनय और कितना विषाद भरा है!

'साध है तुम बन सघन तम,
सुरँग अवगुंठन उठा गिन आँसुओं की रेख लेते।'

महादेवी की इस साध में उनके हृदय का असीम सूनापन और विरह-विषाद झाँक रहा है।

'क्यों रहोगे क्षुद्र प्राणों में नहीं,
क्या तुम्हीं सर्वेश एक महान हो?'

महादेवी के हृदय के इस व्यंग्य भरे उद्‌गार में प्रणय का सम्पूर्ण माधुर्य उतर आया है।

अस्तु, कवयित्री की अनुभूतियाँ उनके हृदय में तरंगित हैं, उपर्युक्त उदाहरणों से इतना तो स्पष्ट है। अब रही बात रहस्यवादी अनुभूतियों की

परख-तुला की। *मेरा मत है कि यदि रहस्यदर्शी कवि की प्रणयानुभूति में क्रमिक विकास—स्थूल से सूक्ष्म तथा ज्ञात से अज्ञात की ओर प्रेम की गति हो; उसके लिये दार्शनिक चिन्तन के पर्याप्त उपकरण हों और कल्पना भावों की अनुगामिनी बन कर उनकी अभिव्यक्ति मात्र में सहायता प्रदान करे, तो उसकी अनुभूतियों में हमें वास्तविकता मान लेनी चाहिये।* अन्यथा रहस्यवाद की परख दूर की बात होगी। हमें यह स्मरण रखना होगा कि भक्त-प्रणयी और ज्ञानी-प्रणयी में उतना ही बाह्य अन्तर है जितना भगवान के भक्त और ज्ञानी पुत्रों में; किन्तु उन दोनों की अनुभूतियाँ वास्तविक हैं। अतएव अब इस तुला पर महादेवी की अनुभूतियों की परीक्षा होनी चाहिये। मैं संक्षेप में यह दिखाने का प्रयत्न कर चुका हूँ कि उनकी अनुभूतियाँ उनके हृदय की कम्पन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है भले ही उनकी अभिव्यक्ति कल्पना से सँवारी गई है। इस प्रकार का संकेत मैंने उस प्रकरण में भी किया है जहाँ मैंने महादेवी की हिन्दी के अन्य रहस्यवादी कवियों के साथ तुलनात्मक विवेचना प्रस्तुत की है। इसलिये अब यहाँ पर यह दिखाने का प्रयत्न होना चाहिये कि उनकी अनुभूतियों में क्रमिक विकास तथा उसके लिये चिन्तन के पर्याप्त उपकरण हैं या नहीं।

महादेवी की अज्ञात के प्रति प्रणय भावना एक दिन में अथवा एक वर्ष में, छलांग भर कर इस स्थिति को नहीं प्राप्त है। उसमें उन सभी दशाओं की उपस्थिति है जिनकी आवश्यकता रहस्यवादी प्रणय के लिये रहती है। यह मानी हुई बात है कि प्रेम की जागृति का प्रथम रूप स्थूल ही होता है। जिसे इस विश्व का लावण्य लुभा न सका, अपनी मोहकता में उन्मत्त न कर सका वह भी क्या हृदय है ? दार्शनिक सिद्धार्थ

पर भी यशोधरा के सौन्दर्य ने, कुछ देर के लिये ही सही, अपना प्रभाव डाला तो था। ज्ञात से अज्ञात के प्रति, स्थूल से सूक्ष्म की ओर, जाना ही प्रेम की सत्यता है। इसके बिना प्रेम की गति स्वाभाविक नहीं है। महादेवी जी को भी आरम्भ में सौन्दर्य की पार्थिवता में आनन्द प्राप्त था। उन्होंने पार्थिव रूप का दर्शन बड़ी तन्मयता के साथ किया है। कुछ उदाहरण ले लीजिये :—

'विधु की चाँदी की थाली
मादक मकरन्द भरी सी,
जिसमें उजियारी रातें
लुटतीं घुलतीं मिसरी सीं।'

× × ×

नव क्षीर-निधि की उर्म्मियों से
रजत झीने मेघ सित;
मृदु फेनमय मुक्तावली से
तैरते तारक अमित;
सखि! सिहर उठती रश्मियों का
पहिन अवगुण्ठन अवनि!
हिम स्नात कलियों पर जलाये
जुगनुओं ने दीप से
ले मधुप-राग समीर ने
बन-पथ दिये हैं लीप से
गाती कमल के कक्ष में
मधु-गीत मतवाली अलिनि!'

फिर इस सौन्दर्य-दर्शन के कारण उनका हृदय भी प्रेम-भावना में सिहर उठने लगा, उनके नेत्र प्रेमाश्रुओं से भर-भर आने लगे; और यह था भी

स्वाभाविक क्योंकि किसी के प्रेम-व्यापार को देख कर द्रष्टा के हृदय में प्रेम की जाग्रति हो ही जाती है। महादेवी जी इसी स्थिति में पहुँचीं। एक उदाहरण लीजिये :—

'सकुच सलज खिलती शेफ़ाली;
अलस मौलश्री डाली डाली;
बुनते नव प्रवाल कुंजों में;
रजत श्याम तारों से जाली;
शिथिल मधु-पवन, गिन-गिन मधु-कण
हरसिंगार झरते हैं झर-झर!
आज नयन आते क्यों भर भर?'

यहीं पर इतना स्पष्ट करते हुये चलना चाहिये कि कवयित्री ने अपनी भौतिक सौन्दर्य-प्रियता को प्रकृति की गोद में ही सीमित रखा है; मानव-लोक तक या तो वह पहुँची ही नहीं अथवा नारी-मर्यादा ने उसकी अभिव्यक्ति पर अंकुश रखा। उनकी कृति से उतनी झलक तो अवश्य मिलती है कि कभी मानवीय-सौंदर्य-वैभव ने उन तक अपने प्रभाव का विस्तार अवश्य रखा था, किन्तु बाद में उनके चिन्तन-प्रौढ़ कवि ने उससे इनका पिण्ड छुड़ा दिया। उस समय, कदाचित प्रसन्न होकर, कवयित्री ने गाया था :—

'हो गया विस्मृत मानव-लोक'

× × ×

दूर छूटा वह परिचित कूल'

फिर भी प्रकृति का वैभव इनकी सौन्दर्य-दर्शन की मधुर प्यास को बहुत दिनों तक कुछ कुछ तृप्त कर सका। परन्तु जब उनका हृदय अपने अनन्त अनुराग का आलम्बन पाने के लिये मचल उठा तो उसने अपनी सुषमा में मुस्कराते हुए किसी अज्ञात की ओर चुपचाप संकेत कर दिया। 'उजि-

यारी अवगुण्ठन में' विधु ने रजनी को देखकर मानो महादेवी जी को किसी रहस्यमय की ओर संकेत कर दिया और तभी से उस रहस्य-निधान की खोज इन्होंने आरम्भ की। इसीलिये वे कहती हैं :—

'उजियारी अवगुण्ठन में
विधु ने रजनी को देखा
तब से मैं ढूँढ़ रही हूँ
उनके चरणों की रेखा।'

(तभी से)— पीड़ा का साम्राज्य बस गया
उस दिन दूर क्षितिज के पार
मिटना था निर्वाण जहाँ
नीरव रोदन था पहरेदार।'

(और)— 'जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ प्राणों के छाले
माँग रहा है विपुल वेदना
के मन प्याले पर प्याले।'

इस अज्ञात की खोज में फिर उन्होंने अपनी जीवन-तरी को प्रेम के अगाध सिन्धु में ठोकरें खाने, झंझा के आघातों को सहने के लिये, छोड़ दिया। उनके कानों में किसी का संगीत सुनाई पड़ा :—

'तरी को ले जाओ मँझधार
डूब कर हो जाओगे पार;
विसर्जन ही है कर्णाधार
वही पहुँचा देगा उस पार।'

फिर क्या था, इन्होंने तरी को मँझधार में छोड़कर आत्मविसर्जन कर ही दिया जिसके बिना प्रेम की पूर्णता और दिव्यता असम्भव है। महादेवी जी अपने अज्ञात नाविक से पूछती भी हैं :—'यही क्या है अनन्त की राह ?'

इस निर्मम ने अपनी मदिर छवि को प्राकृतिक दृश्यों के रूप में, चिन्तन की ज्योति में, दिखा कर और फिर स्पर्श से दूर रह कर, उन्हें जो एक पीड़ा का राज्य दे रखा। उसमें उन्होंने अपने प्राण का दीपक जला कर उसे प्रकाशित रखा है और आज तक वे अपनी विरह-दशा में बेसुध हैं जिसका परिचय दिया जा चुका है।

इस स्थिति तक पहुँचने में महादेवी को अध्यात्मिक चिन्तन का पर्याप्त साहाय्य प्राप्त रहा। उनके अनुरागी हृदय को एक दार्शनिक मस्तिष्क मिला जिसके कारण दिग्भ्रम अथवा पथ-भ्रष्ट होने का भय जाता रहा, क्योंकि एक में मधुर अनुभूतियों की तीव्र गति थी तो दूसरे में चिन्तन की दिव्य ज्योत्स्ना। महादेवी के रहस्य-दर्शन से पाठकों को अवगत कराया जा चुका है, अतः गाथा गीत फिर न गा कर इतना कहना ही पर्याप्त है कि कवयित्री की प्रणयानुभूतियों की दिव्यता और सत्यता के लिये उनके क्रमिक विकास और ब्रह्म-चिन्तन की मुहर है। किन्तु तिसपर भी लोग, उनमें, स्थूलता के स्पर्श में सजग, मतवालेपन का आरोप कर ही देते हैं। ऐसे लोगों से महादेवी जी कहती हैं :—

'मैंने कब देखी मधुशाला ?
कब माँगा मरकत का प्याला ?
कब छलकी विद्रुम सी हाला ?
मैंने तो उनकी स्मित में
केवल आँखें धो डालीं।
क्यों जग कहता मतवाली ?'

अपने अज्ञात के मूक-मिलन की सत्यता का विश्वास भी वे जग को दिला रही हैं :—

'कैसी कहती हो सपना है
अलि उस मूक-मिलन की बात

भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास'

थोड़ी सी चर्चा उनकी दुःखानुभूति की भी करनी है क्योंकि उनके आँसुओं में भी स्थूल अभाव का दर्शन लोगों ने किया है। इतना तो पुस्तक के आरम्भ में ही कहा गया है कि विश्व की निस्सारता में जीवन की करुण स्थिति का अनुभव उन्हें दुःख की इतनी गहरी अनुभूति दे सका है। यह मानने में कि 'उनके आँसुओं में निज का अभाव नहीं अपितु जग का विषाद साकार हो उठा है, कोई आश्चर्य नहीं है। सिद्धार्थ को जो अनुभूति प्राप्त थी वह औरों को भी मिल सकती है केवल आवश्यकता है सूक्ष्म अनुभव और गूढ़ चिन्तन की जो महादेवी को प्राप्त हैं। भव की चक्की में पिसते विश्व को देख कबीर भी रो पड़े थे :—

'चलती चक्की देख कर, दिया कबीरा रोय।
दो पाटों के बीच में साबित बचा न कोय ॥

स्पष्ट है कि कबीर के आँसू औरों के दुःख के कारण गिरे, किन्तु क्या उनका रोदन वास्तविकता से परे था? नहीं; क्योंकि 'पर दुख द्रवहिं सन्त सुपुनीता'। दूसरों के विषाद को देखते हुये भी अपने लघु सुख में हँसने वालों को सन्त तो नहीं कहा जा सकता, और चाहे जो कहा जाय। अतः ऐसे व्यक्ति तो महात्माओं के रुदन को पागलपन अथवा अभिनय कह कर उनका उपहास ही करेंगे किन्तु सन्तों का कहना है:— 'खल परिहास होइ हित मोरा'।

महादेवी जी की पीड़ा का एक दूसरा कारण अज्ञात के प्रति उनका अखण्ड विरह भी है। उस निर्मम ने अपना रूप अपनी प्रेयसी को जो एक बार दिखा दिया था उसके कारण उनके हृदय में पीड़ा का राज्य बस गया :—

'इन ललचाई पलकों पर
पहरा जब था व्रीड़ा का
उस चितवन ने दे डाला
साम्राज्य मुझे तब पीड़ा का'

अपने दुःख वाद के बारे में फैलाये गये भ्रम को दूर करने के लिये महादेवी जी स्वयं कहती हैं :—

'जग हँस कर कह देता है
मेरी आँखें हैं निर्धन
इनके बरसाये मोती क्या
वह अब तक पाया गिन ?'

(और यद्यपि) 'कहता जग दुख को प्यार न कर
किसने निज को खोकर पाया ?
किसने पहचानी वह छाया ?
तू भ्रम वह तम तेरा प्रियतम
आ सूने में अभिसार न कर ।'

× × ×

जाना कलियों के देश तुझे
तो शूलों से शृंगार न कर
कहता जग दुख को प्यार न कर।'

× × ×

(किन्तु) भावे क्या अलि ! अस्थिर मधुदिन
दो दिन का मृदु मधुकर-गुंजन
पल भर का यह मधु-मद-वितरण
चिर वसन्त है मेरे इस
पतझर की डाली डाली।

इतना उत्तर पाने पर भी यदि कोई कहे कि महादेवी की अनुभूतियों में सत्यता नहीं है तो फिर उसका उपचार ही क्या। ऐसे ही लोगों को संकेत करके 'बृन्द' ने कहा था :—

'जो जाको गुन जानई सो तेहि आदर देत।
कोयल अंबहिं लेत है, काग निबौरी लेत॥'

नहीं तो अपनी विरह दशा में विराट श्रृंगार किये महादेवी जी मिलनोत्सुकता में, आकुलता में :—

'क्यों वह प्रिय आता पार नहीं'

कह कर फिर जब चिन्तन की प्रेरणा से गाने लगती हैं :—

'क्या अनुनय में, मनुहारों में
क्या आँसू में, उद्गारों में
आवाहन में, अभिसारों में
जब मैंने अपने ही प्राणों में
प्रिय की छाँह छिपाली।'

तो वे लोग अपने कान खोल कर उसे सुनते क्यों नहीं, क्यों उनकी अनुभूतियों की दिव्यता और सत्यता का दर्शन नहीं करते ?

अस्तु, यदि रहस्यवाद की दिव्यता और उसकी अभिव्यक्ति करने वाली कला की सूक्ष्मता का प्रश्न नहीं उठता, तो रहस्यवादी कवि की अनुभूतियों की अपार्थिवता और वास्तविकता के बारे में शंका भी नहीं। परन्तु आज के बौद्धिक युग में यदि कोई साहित्य को साम्प्रदायिकता अथवा 'वाद' के किसी संकुचित सीमा में ले जाकर ही परखने का यत्न करेगा तो साहित्य की असीमता को निज में समा लेने की क्षमता न होने के कारण या तो वह सीमा स्वयं टूट जायगी या साहित्य ही विरूप हो उठेगा।

६

'महादेवी की कला-विभूति'

देश-काल-सापेक्ष कला का रूप आज तक न स्थिर हो सका है और न हो पायेगा। अपनी इस अनस्थिरता में ही कला का सौन्दर्य निहित है; नहीं तो. विज्ञान की भाँति मानव-लोक कुछ काल बाद उसे भी नीरस बना डालता। कोई भी देश, किसी भी काल में, ऐसा नहीं रहा जहाँ के कला-प्रेमी अपनी गढ़ी हुई परिभाषा के भीतर कला को बाँधने का प्रयत्न न किये हों। किन्तु वह सदैव मुक्त रही। कला के कुछ उपासकों ने अपने साहित्य को उसकी गोद में डालकर उसकी सौभाग्य-श्री को और बढाया। परन्तु भारत का साहित्य सम्बन्धी दृष्टिकोण सदा से विनोदपूर्ण न होकर जीवन के सत्यान्वेषणों के आधार पर स्थित गाम्भीर्य लिये अपने वैशिष्ट्य में श्रद्धास्पद रहा अतः उसे कला मान लेने की भूल हमारे कलाकारों ने नहीं की। हमारे यहाँ कला को 'अपूर्ण की पूर्ति' माना गया है। असुन्दर को सुन्दर, सुन्दर को सजीव और भीषण को निर्जीव बना देने में ही कला की कमनीयता

है—उसका गौरव है। महादेवी जी आधुनिक युग की श्रेष्ठ कलाकर्त्री हैं। अतः उनकी कला की परख उपर्युक्त दृष्टिकोण से कर लेनी चाहिए।

विश्व जिससे डरा करता है, जिसके निवारण के लिये वह अपने आर्त्त-क्रन्दन से निराकार को व्यक्त बना डालता है, उस दुःख को महादेवी ने कैसा सजल रूप दिया है, इसे स्पष्ट किया जा चुका है। उससे भी बड़ी और संसार की अनिवार्य विभीषिका मृत्यु है जिसके स्मरण मात्र से वह सिहर उठता है। विश्व के करुण-क्रन्दन को अपने निठुर और गम्भीर अंक में लपेटे वह अपनी भीषणता में अनन्त है। प्रकृति के शक्तिमान ज्योतिष्पुंज भी महामृत्यु के ताण्डव में निरुपाय से काँप उठते हैं, चूर चूर हो जाते हैं किन्तु कवयित्री की तूलिका ने इसके भीषण चित्र पर ऐसा मोहक रंग चढ़ा दिया है कि वह अपनी भीषणता छोड़ कर आलिंगन की प्रिय वस्तु बन उठा। देखिये उसका मोहक चित्र :—

'विश्व-जीवन के उपसंहार !
तू जीवन में छिपा वेणु में ज्यों ज्वाला का वास
तुझमें मिल जाना ही है जीवन का चरम विकास
पतझर बन जग में कर जाता
नव वसन्त संचार।

× × ×

इस अनन्त पथ में संसृति की साँसें करतीं लास
जाती हैं असीम होने मिट मिट कर असीम के पास,
कौन हमें पहुँचाता तुझ बिन
अन्तहीन के पार ?'

बड़े बड़े अचलों के हृदय को छेद देने वाली 'चपला' को 'नीलम-मन्दिर की हीरक-प्रतिमा' बनाकर उनकी कला ने किसे नहीं लुभाया। सुन्दर

को सजीव करने में, फिर, उस कला को कौन पा सकता है जिसमें भीषण को निर्जीव ही नहीं अपितु सुन्दर बना देने की क्षमता है। जितने ही उच्च कोटि का सौन्दर्य-दर्शन कवयित्री ने किया है उतनी ही ऊँची उनकी कला है जिसके कारण प्रकृति का साधारण से साधारण अंश भी महान बन कर हमारे अलौकिक आनन्द का कारण हो उठा है :—

अंचल में मधु भर जो लातीं,
मुस्कानों में अश्रु बसातीं,
बिन समझे जग पर लुट जातीं,'

वे कलियाँ, जो—

'लक्ष्यहीन सा जीवन पाते
घुल औरों की प्यास बुझाते
अणुमय हो क्षणमय हो जाते,'

वे नीरद, और जो—

'अलसाया विश्व सुलाते
बुन मोती का जाल उड़ाते
थकते पर पलकें न लगाते,'—वे तारक भला

किस सजीव से कम हैं? महादेवी की *चित्रण-शक्ति* इतनी प्रखर है कि इनका प्रत्येक चित्र हमारे नेत्रों के सम्मुख खड़ा होकर अपने अपेक्षाकृत अधिक सौन्दर्य का मूल्य पूछ पड़ता है जिसके उत्तर में हमारा हृदय खिल उठता है। एक, दो उदाहरण देने का लोभ मैं संवरण न कर सकूँगा :—

'मुरझाया वह कंज बना जो मोती का दोना'

प्रातःकालीन कमल को 'मोती का दोना' कह कर कवयित्री ने अनन्त सुषमा और 'मुरझाया' कह कर असीम विषाद का एक साथ ही मार्मिक दर्शन प्रस्तुत कर दिया। तनिक रजनीगन्धा का शृंगार भी देख लीजिए :—

'रजनीगन्धा आँज रही नयनों में सोना'

इस एक छोटे से पद में 'सन्ध्या' की सम्पूर्ण विभूति सिमिट कर 'रजनी-गन्धा' के नेत्रों में उतर आई है। प्रिय को रिझाने के निमित्त शृंगार करने वाली उत्सुक रूपसी नायिका का चित्र भी इसमें झाँक उठता है। विरहिणी पंकज-कली को भी देखते चलिए :—

'रवि से झुलसते मौन दृग,
जल में सिरहते मृदुल पग
किस व्रत व्रती तू तापसी
जाती न सुख दुख से छली?'

मधु से भरा विधु-पात्र है,
मद से उनींदी रात है;
किस विरह में अवनत मुखी
लगती न उजियाली भली?

यह देख ज्वाला में पुलक
नभ के नयन उठते झलक
तू अमर होने नभ-धरा के
वेदना-पथ में पली

'नभ-धरा' के 'वेदना-पथ' में पली, विश्व सुषमा से उदासीन, विरह में बेसुध तपस्विनी पंकज-कली के चित्र में हम महादेवी का सम्पूर्ण इतिहास पढ़ सकते हैं। रूप-चित्र का एक और दृश्य देख कर हम आगे बढ़ चलें :—

'मत अरुण घूँघट खोल री!
निशि गई मोती सजाकर,
हाट फूलों में लगा कर
लाज से गल जायँगे
मत पूछ इनसे मोल

उपर्युक्त पद में अरुणा, निशा, ओस और फूलों के मधुर रूप-चित्रों के साथ ही कवयित्री ने अपनी विरह-जन्य संवेदना की जो अपूर्व व्यंजना प्रस्तुत की है उस पर कला को भी अपनी कमनीयता का गर्व होगा।

गत्यात्मक सौन्दर्य का चित्रण भी महादेवी जी ने उसी कौशलके साथ किया है जिसके कारण उनके स्थिर चित्र निखर उठे हैं :—

'अम्बर गर्वित
हो आया नत
चिर निस्पन्द हृदय में उसके
उमड़े री पुलकों के सावन!

× × ×

चौकीं निद्रित
रजनी अलसित
श्यामल पुलकित कम्पित कर में
दमक उठे विद्युत के कंकण।
दिशि का चंचल
परिमल अंचल
छिन्न हार से बिखर पड़े सखि
जुगनू के लघु हीरक कण।'

× × ×

महादेवी के काव्य में सौन्दर्य-चित्रण का बाहुल्य है। उनके प्रत्येक गीत में किसी न किसी प्रकार की छबि झलक उठती है चाहे वह स्थूल स्थिर वा गत्यात्मक हो, अथवा सूक्ष्म अनुभूत्यात्मक। न जाने क्यों, रूप-चित्रण उन्हें इतना प्रिय है कि उनके गीत का प्रत्येक पद, प्रायः, एक चित्र बन कर ही रहता है; उनका चित्रकर्त्री होना ही इसका कारण ज्ञात होता है। अस्तु, विस्तार-भय से उन सभी रूप चित्रों का उल्लेख

न करके, जीवन की एक गत्यात्मक झाँकी देख कर, इस विषय को यहीं समाप्त करके महादेवी की कला-परख अन्यत्र होनी चाहिए ---

सरल तेरा मृदु हास
अकारण वह शैशव का हास
बन गया कब कैसे चुपचाप,
लाजभीनी सी मृदु मुस्कान !
तड़ित् सी जो अधरों की ओट
झाँक हो जाती अन्तर्धान ।
सजनि, वे पद सुकुमार ।
तरंगों से द्रुत पद सुकुमार—
सीखते क्यों चंचलगति भूल,
भरे मेघों की धीमी चाल ?
तृषित कन कन को क्यों अलि चूम,
अरुण आभा सी देते ढाल ?
मुकुर से तेरे प्राण
विश्व की निधि से तेरे प्राण
छिपाये से फिरते क्यों आज
किसी मधुमय पीड़ा का न्यास
सजल चितवन में क्यों है हास
अधर में क्यों सस्मित निश्वास ?'

\+ \+ \+

रीति कालीन कवियों ने कविता पर इतने *अलंकार* लाद दिये कि उसके सौन्दर्य ने, उस भार में, अपनी वास्तविकता ही खो दी। लोगों का मन अलंकार-लावण्य से भर उठा और मन की इस पलायन-वृत्ति में क्रान्ति सजग हो चली। इस कारण अलंकारों की जितनी उपेक्षा

आधुनिक युग में हो सकी उतनी कदाचित और कभी नहीं। बाह्य सजावट से छुट्टी पाकर काव्य अपने भाव-सौन्दर्य को सँवारने लगा। कवि गा पड़ा :-'वाणी मेरी तुम्हें क्या चाहिए अलंकार' फिर भी, कविता में अलंकार लिपटे ही रहे, अपेक्षाकृत अधिक चमत्कार और सुषमा के साथ। महादेवी जी के काव्य में, जाने अथवा अनजाने, अप्रस्तुतों का बहुत सुन्दर विधान हो सका है। रहस्यवादी होने के नाते, अपने सूक्ष्म विचारों और कोमल अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिये उनकी कला-कल्पना को सदा जाग्रत रहना पड़ा है जिसके कारण उनके गीतों में अनोखे अप्रस्तुतों द्वारा मार्मिक अभिव्यंजना प्रस्तुत हो सकी है। उनकी उपमाओं को देख कर देववाणी के श्रेष्ठतम कलाकार कालिदास का स्मरण हो आता है। वैसी मधुर और व्यंजना से परिपूर्ण उपमायें हिन्दी में अन्यत्र नहीं मिलतीं। मालोपमा के कुछ सुन्दर उदाहरण लीजिये :—

'दैव सा निष्ठुर, दुःख सा मूक
स्वप्न सा, छाया सा अनजान
वेदना सा, तम सा, गम्भीर
कहाँ से आया वह आह्वान'

इस पद में अज्ञात 'आह्वान' की विविध उपमायें देखते ही बनती हैं।

'सिकता में अंकित रेखा सा,
वात विकम्पित दीप शिखा सा,
काल कपोलों पर आँसू सा
ढुल जाता हो म्लान।'

उपर्युक्त पद में जीवन की कई उपमायें कितनी वास्तविक हो सकी हैं?

'निर्धन के धन सी हास-रेख, जिनकी जग ने पाई न देख'

'हास-रेख' की उपर्युक्त उपमा का आनन्द लीजिये । कहीं कहीं तो उपमा और रूपक एक साथ ही आकर अनूठे हो जाते हैं। यथा:—

'अवनि-अम्बर की रूपहली सीप में
तरल मोती सा जलधि जब काँपता,
तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से,
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में;

+ + +

'जीवन जल-कण से निर्मित सा,
चाह इन्द्रधनु से चित्रित सा
सजल मेघ सा धूमिल है जग
चिर नूतन सकरुण पुलकित सा'

+ + +

मुस्करा कर राग मधुमय
वह लुटाता पी तिमिर-विष
आँसुओं का क्षार पी मैं
बाँटती नित स्नेह-रस
सुभग मैं उतनी मधुर हूँ मधुर जितना प्रात।'

महादेवी के प्रिय अलंकार हैं *उपमा*, *रूपक* और *अन्योक्ति*। उपमा के कुछ विधानों का दर्शन हो चुका अब *रूपक* का भी आनन्द लेते चलिए :—

'तम-तमाल ने फूल
गिरा दिन पलकें खोली
मैंने दुख में प्रथम
तभी सुख-मिश्री घोली।'

'तम-तमाल', 'दिन-पलक', और 'सुख-मिश्री' में रूपक तथा 'फूल में रूपकातिशयोक्ति है। कुछ और उदाहरण —

'मिलन-इन्दु बुनता जीवन पर,
विस्मृति के तारों से चादर
विपुल कल्पनाओं का मन्थर—
बहता सुरभित वात !'

× × ×

जग पतझर का नीरव रसाल
पहने हिम जल का अश्रु-माल
मैं पिक बन गाती डाल डाल
सुन फूट-फूट उठते पल में
सुख दुःख मंजरियों के अंकुर

× × ×

'प्रिय ! सान्ध्य गगन मेरा जीवन'; 'किस सुधि वसन्त का सुमनतीर, कर गया मुग्ध मानस अधीर'; 'मैं बनी मधुमास आली'; 'विरह का जलजात जीवन' आदि गीतों में रूपकों का जितना सुन्दर विधान हो सका है उतना किसी भी अन्य कवि द्वारा नहीं हुआ।

'छू अरुण का किरण-चामर
बुझ गए नभ-दीप निर्भर'

उपर्युक्त पद में 'तारों के बुझने का कारण सूर्य की किरणों का स्पर्श' कहा गया, अतः *विभावना* है। इसका एक और उदाहरण :—

'आज ज्वाला से बरसता क्यों मधुर घनसार सुरभित'

अब *'सन्देह'* की बानगी लीजिये :—

'यह विस्मृति है या सपना वह, या जीवन विनिमय की भूल'

× × ×

'किसी अश्रुमय घन का हूँ कन, टूटी स्वर लहरी की कम्पन,'
या ठुकराया गिरा धूलि में, हूँ मैं नभ का फूल'

अपह्नुति और *उल्लेख* के क्रमशः एक एक उदाहरण लीजिये :—

'पारद के मोती से चंचल, मिटते जो प्रतिपल बन ढुल ढुल,
हैं पलकों में करुणा के अणु, पाटल पर हिम-हास नहीं यह।'

× × +

'तुम सान्त्वना हो दैव की, तुम भाग्य का वरदान हो
टूटी हुई झंकार हो, गतकाल की मुस्कान हो
उस लोक का सन्देश हो, इस लोक का इतिहास हो
भूले हुए का चित्र हो, सोई व्यथा का हास हो।'

× × ×

अन्योक्तियों के लिए 'शलभ मैं शापमय वर हूँ', किसी का दीप निष्ठुर हूँ;' 'पंकज-कली', 'री कुंज की शेफालिके', 'कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो' आदि गीतों को देखिए :—

अमूर्त्त प्रस्तुत के लिए अमूर्त्त अप्रस्तुत-विधान

'झंझा की पहली नीरवता सी नीरव मेरी साधें'

× × ×

'प्रथम प्रणय की सुषमा सा, यह कलियों की चितवन में कौन'

× × ×

अमूर्त्त प्रस्तुत के लिए मूर्त्त अप्रस्तुत

गूँथे विषाद के मोती चाँदी सी स्मित के डोरे'

× × ×

'राह मेरी देखती स्मृति निराश पुजारिनी सी'

मूर्त्त प्रस्तुत के लिए अमूर्त्त अप्रस्तुत

'बुलबुले मृदु उर के से भाव
रश्मियों से कर कर अपनाव
\+ + +
'मचलते उद्गारों से खेल उलझते हों किरणों के बाल'
\+ + +

विदेशी कहे जाने वाले अलंकारों का भी आनन्द लीजिए :—

विशेषण विपर्यय :—

'किरणों के प्यासे चुम्बन में'
\+ + +
आँखों की नीरव भिक्षा में'
\+ + +
'ओठों की *हँसती पीड़ा* में'
\+ + +

इन पंक्तियों में 'चुम्बन' 'प्यासा' नहीं है, किरणें प्यासी हैं; 'भिक्षा' 'नीरव' नहीं है, माँगनेवाला नीरव है और पीड़ित व्यक्ति के ओठ हँसते हैं न कि पीड़ा। उसी प्रकार :—

'हमारा मानस-कुंज उजाड़ दे गया *नीरव रोदन* कौन'
× × ×
हृदय की लेकर *प्यासी साध*'
\+ + +
'कहता है जिनका *व्यथित मौन*'
\+ + +

इन पंक्तियों में विशेषण-विपर्यय समझ लेना चाहिए। महादेवी जी ने इस विदेशी अलंकार को, आधुनिक युग के अन्य कलाकारों के समान

ही, विशेष रुचि से अपनाया है। अब '*मानवी करण*' के भी कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं। प्रकृति के प्रत्येक अंश, मानवीय भावनाओं, अनुभूतियों, मानसिक दशाओं और व्यापारों आदि सभी को महादेवी ने साकार, सजीव-से, कर के ही छोड़ा है :—

'घायल मन लेकर सो जाती, मेघों में तारों की *प्यास*'

\+ + +

'*साधनायें* बैठी हैं मौन'

\+ + +

'*रजनी* ओढ़े जाती थी झिलमिल तारों की जाली
उसके बिखरे वैभव पर जब रोती थी *उजियाली* ।'

अब इन अनुपम कलाकर्त्री के कुछ *विरोध-मूलक प्रयोग-वैचित्र्य* का भी आनन्द लीजिए :

'सपनों की रज आँज गया नयनों में प्रिय का हास
अपरिचित का *पहचाना हास*'

'*इन्द्रधनुष* करने आया *तम* के श्वासों में वास'

'*बाँधती निर्बन्ध* को मैं बन्दिनी निज बेड़ियाँ गिन'

'आज *खो निज को* मुझे *खोया मिला* विपरीत सा क्या ?'

* * *

छायावाद और रहस्यवाद हृदय की कोमल अनुभूतियों को लेकर चले, अतएव उनकी अभिव्यक्ति भी अपेक्षाकृत अधिक रमणीय कला के माध्यम से ही अनिवार्य हुई। हमारी अनुभूतियाँ, हमारे भाव, जितने सूक्ष्म तथा कोमल होंगे उन्हें व्यक्त करने में हमें उतने ही नैपुण्य की अपेक्षा रहेगी। यही कारण है कि अपने सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने में सब किसी को सफलता प्राप्त नहीं होती। साहित्य में यह कठि-

नाई और बढ़ जाती है क्योंकि वे सभी साधन, जो हमें प्रत्यक्ष भाषण में सहज प्राप्त रहते हैं, साहित्य में नहीं मिल पाते। हृदय के भावों को व्यक्त करने में अपने को असमर्थ पाकर हम, प्रायः, इंगितों का उपयोग कर लेते हैं; किन्तु साहित्य में इन इंगितों का प्रवेश असम्भव है, उसमें कहाँ 'आँखों का शील' और 'अधरों की स्मित'। अस्तु, जब हिन्दी-काव्य की मधुर अनुभूतियों के सूक्ष्मत्व को, द्विवेदीकालीन भाषा, आँकने में सर्वथा असमर्थ सिद्ध हुई तब हमारे कलाकारों ने, कुछ तो उसी की खोई हुई शक्ति को पुनः जीवित करके और कुछ अपनी ओर से नवीन शक्ति देकर, उसे सक्षम बनाया। अब भाषा में नई शक्ति, नूतन सौन्दर्य और दिव्यता आ चली जिसके कारण अनुभूतियों के रमणीय चित्र प्रस्तुत हो सके। शब्दों की लक्षणा और व्यजना शक्तियाँ अधिक सजग हो उठीं। साथ ही साथ कल्पना की गति भी दूर तक हुई। इसलिये छायावादी और रहस्यवादी कवियों की कृतियों के अध्ययन के लिए उनके कुछ लाक्षणिक प्रयोग और कल्पना-वैचित्र्य का ज्ञान आवश्यक है। महादेवी के कुछ 'लाक्षणिक' प्रयोगों के उदाहरण ले लीजिए :—

'छिपे मानस में पवि नवनीत, निमिष की गति निर्झर के गीत'
अश्रु, की उर्मि हास का वात, कुहू का तम माधव का प्रात'

इन पंक्तियों में 'पवि' से कठोरता, 'नवनीत' से कोमलता, 'निमिष की-गति' से 'क्षण भंगुरता', 'निर्झर के गीत' से 'सकोलाहल निरन्तर गति-शीलता; 'कुहू का तम' से 'वेदना, विषाद और अज्ञान', तथा 'माधव-का प्रात' से 'सुषमा, उल्लास और उन्माद आदि' का बोध होता है।

'स्वप्न लोक के फूलों से कर अपने जीवन का निर्माण'

यहाँ 'स्वप्न-लोक के फूलों' का अभिप्राय उन इच्छाओं से है जिनकी पूर्ति स्वप्न में ही सम्भव है। कुछ और उदाहरण लीजिये :—

'दृगों में सोते हैं अज्ञात, निदाघों के दिन पावस रात'

*　　*　　*

इसमें है झंझा का शैशव, अनुरंजित कलियों का वैभव'

*　　*　　*

अन्धकार दिन की चोटों पर 'अंजन' बरसाने आते'

*　　*　　*

'प्रतीक्षा में मतवाले नयन उड़ेंगे जब सौरभ के साथ'।

*　　*　　*

उपर्युक्त उदाहरणों में लक्षणा का चमत्कार स्वयं समझ लेना चाहिए।

चिन्तन की प्रौढ़ता, हृदय में सूक्ष्म अनुभूतियों की जाग्रति और उसके परिज्ञान से, यदि, कवि की महत्ता प्रकट होती है तो उन अस्थूल अनुभूतियों को मूर्त्त रूप देने में कला की विभूति भी। महादेवी की अनुभूतियों के लोकोत्तर होनेमें सन्देह है नहीं, अतः अब संक्षेप में हमें यह देख लेना चाहिए कि उन अनुभूतियों की अभिव्यंजना में उनकी कला को कितनी सफलता प्राप्त है।

मूँद पलकों में अचंचल, नयन का जादू भरा तिल;
दे रही हूँ अलख अविकल को सजीला रूप तिल तिल।'

इस छोटे से पद में रहस्यवाद के विराट और गूढ़ चित्र को व्यक्त करने का श्रेय उनकी कला को है। 'अलख अविकल' में अद्वैतवाद, 'रूप' में भक्तों सी सगुण भावना और 'सजीला' में प्रणय स्पष्ट है; साथ ही साथ 'नयन का जादू भरा तिल' अपनी अचंचलता में रहस्यवादी प्राण की तन्मयता को बता डालता है। 'प्रणयी अपने प्रिय की छवि को अपनी पुतलियों में अंकित करके, उसे पलकों में बाँध अपने हृदय को प्रफुल्लित करता है' इसकी व्यंजना इन पंक्तियों में सजग है।

> साँझ की अन्तिम सुनहले हास सी चुपचाप आकर;
> मूक चितवन की विभा तेरी अचानक छू गई भर
> बन गई दीपावली तब आँसुओं की पाँत मेरी'

अज्ञात सौन्दर्यवान की 'मूक चितवन' से महादेवी के हृदय में उसके वियोग के कारण जो असीम वेदना जाग्रत हो उठी है उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति उपर्युक्त पद में है। विरह-वेदना का एक रंगीन चित्र और निरखिए :—

> 'पीड़ा टकरा कर ` , घूमे विश्राम विकल सा
> तम बढ़े मिटा डाले सब जीवन काँपे चलदल सा।
> फिर भी इस पार न आवे जो मेरा नाविक निर्मम
> सपनों से बाँध डुबाना मेरा छोटा सा जीवन।'

युग युग की विरहिणी महादेवी की चिर-प्रतीक्षा और साधना की झाँकी निम्नांकित पद में देखिये :—

> 'कितनी रातों की मैंने नहलाई है अँधियारी
> धो डाली है सन्ध्या के पीले सेंदुर से लाली
> नभ के धुँधले कर डाले अपलक चमकीले तारे
> इन आहों पर तैरा कर रजनीकर पार उतारे।'

अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिये जहाँ कहीं महादेवी ने वक्रोक्ति का सहारा लिया है वहाँ तो उनकी कला और भी रमणीय है:—

> 'विश्व में वह कौन सीमाहीन है ?
> हो न जिसका खोज सीमा में मिला।
> क्यों रहोगे क्षुद्र प्राणों में नहीं,
> क्या तुम्हीं सर्वेश एक महान हो ?'

विरह में तड़पते प्राण की यह प्रबल अभिलाषा रहती है कि, किसी भी प्रकार, उसका प्रिय, वेदना के कारण क्षीण, उसके शरीर को देख ले। इस

प्रकार उसका ध्येय रहता है अपने प्रिय को करुणार्द्र करने का। उसका विश्वास है कि यदि उसकी करुण-स्थिति को वह प्रिय देख ले तो अवश्य ही उसके पास आ जायगा। महादेवी को भी यह विश्वास है; देखिये उसकी अभिव्यक्ति :—

'यह सजल मुख देख लेते'
यह करुण मुख देख लेते'

* * *

'चपल पद धर, आ अचल उर
वार देते मुक्ति, खो निर्वाण का संदेश देते।'

महादेवी का कोई गीत आपको ऐसा न मिलेगा जिसमें अपनी भावानुभूति की अभिव्यक्ति करने में उन्हें सफलता न मिली हो। उपर्युक्त उदाहरणों से इतना स्पष्ट हो चुका है। परन्तु इसके लिये महादेवी जी को कल्पना का बहुत बड़ा सहारा लेना पड़ा है। कल्पना कवि और काव्य के लिए आवश्यक है, किन्तु जब वह इतनी ऊँचाई पर उड़ने लगती है जहाँ पहुँचने में पाठक की कल्पना हार मान लेती है, तब काव्य के रसास्वादन में बाधा पड़ती है। अतः ऐसी कल्पनाओं से काव्य-सौन्दर्य बिना घटे नहीं रह सकता। अर्थ-दुरूहता में कवि का नीरस पाण्डित्य भले ही झलके, परन्तु उसके द्वारा हमारे भाव तरंगित नहीं हो सकते जो काव्य का प्रयोजन है। कल्पना के वैचित्र्य में उलझ कर हमारा हृदय भाव-मग्न नहीं हो पाता। महादेवी के काव्य में कुछ ऐसी कल्पनायें हैं। यथा—

'निश्वासों का नीड़ निशा का
बन जाता जब शयनागार
लुट जाते अभिराम छिन्न
मुक्तावलियों के बन्दनवार'

महादेवी की इस कल्पना को समझने में कई कठिनाइयाँ प्रस्तुत हैं जिनके लिए इस गीत की व्याख्या देखिए। उसी प्रकार :—

रजनी ओढ़े जाती थी झिलमिल तारों की जाली
उसके बिखरे वैभव पर जब रोती थी उजियाली'

इस पद में उजियाली का रोना हमारी कल्पना शक्ति पर भार अवश्य लाद देता है।

'स्मित से कर फीके अधर अरुण,
गति के जावक से चरण लाल
स्वप्नों से गीली पलक आँज,
सीमन्त सजा ली अश्रु-माल'

'स्मित' से अधर को अरुण करने और 'अश्रु-माल' से 'सीमन्त' सजाने की कल्पना स्वयं बोझिल है। परन्तु ऐसी कल्पनायें जिनके कारण हमारा हृदय खिल उठता है, महादेवी के गीतों में अधिक है। प्रातःकालीन एक खण्ड दृश्य का काल्पनिक चित्र देखिये :—

छू मृदुल जावक रचे पद
हो गयेसित मेघ पाटल;
विश्व की रोमावली आलोक-अंकुर सी उठी जल।'

× × ×

भौंरे का प्रथम गीत ही कलिका की मुस्कान बन उठता है :—

कली पर अलि का पहला गान
थिरकता जब बन मृदु मुस्कान'

+ + +

बादल के मधुर व्यापार का रंगीन चित्र नीचे देखिए :—

अपने उर पर सोने से, लिख कर कुछ प्रेम कहानी
सहते हैं रोते बादल तूफानों की मनमानी'

+ + +

दिन और रात्रि के विषय में, महादेवी की कल्पना का माधुर्य परखिए :—

'एक प्रिय-दृग-श्यामता सा,
दूसरा स्मित की विभा सा;

यह नहीं निशि दिन इन्हें
प्रिय का मधुर उपहार रे कह।

\+ + +

महादेवी की कल्पना है कि कलियों पर पड़ीं जल की बूँदें वास्तव में ओस नहीं हैं, वरन्

'नींद सागर से सजनि ! जो ढूँढ़ लाई स्वप्न मोती
गूँथती हूँ हार उनका क्यों कहा मैं प्रात रोती ?
पहनकर उनको स्वजन मेरी कली को जा हँसाता ?'

* * *

अपने अनुभूत सत्य को, अपनी बात को, स्पष्ट करने में महादेवी जी ने ऐसे ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किया है कि हमारी बुद्धि चुपचाप उन्हें मान तो लेती ही है, हृदय भी आनन्द में पुलकित हो उठता है। एक दो उदाहरण देख लीजिए :—

महादेवी का मत है कि उनके 'अरमान' कभी भी बुझ नहीं सकते। इसकी सत्यता के लिए उनके द्वारा दिए गए तर्क सुनिए :—

'नभ डुबा पाया न अपनी बाढ़ में भी क्षुद्र तारे,
ढूँढ़ने करुणा मृदुल घन चीर कर तूफान हारे
अन्त के तम में बुझें क्यों
आदि के अरमान मेरे।'

प्रिय-विरह की चिर-साधना में मग्न महादेवी के प्राण की हार में भी जय है :—

हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी।

* * *

महादेवी की कुछ मार्मिक उक्तियाँ हमारे हिन्दी काव्य की निधियाँ हैं। उनकी उपयोगिता हमारे जीवन की उलझनों को सुलझाने में

भी है। एक दो उदाहरण लेते चलिए :--

'प्यास ही जीवन, सकूँगी
तृप्ति में मैं जी कहाँ ?'

* * *

'दीप सी जलती न तो यह सजलता रहती कहाँ'

* * *

'सुख-दुःख के भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने चुने शब्दों में स्वरसाधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही *गीत* है।' महादेवी को, प्रिय के चिर-विरह के कारण, भावातिरेक और आन्तरिक-साधना से, संयम प्राप्त है जिसके कारण उनका प्रत्येक उद्‌गार गीत बन कर ही निकल सका। साथ ही साथ उन गीतों में व्यक्त वेदना भी आत्मानुभूत है; उनमें अपने सुख-दुःख की अभिव्यक्ति है। इसीलिये जब हम उनके 'गीत' पढ़ते हैं तब उसके प्रति पद के साथ हमारा हृदय लिपटा चलता है। हिन्दी में मीराबाई को छोड़ कर इतने मधुर और आत्मव्यंजक गीत लिखने में महादेवी के समान अन्य किसी को सफलता न मिल सकी।

आचार्य 'शुक्ल' जी ने ठीक ही कहा था :—'न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजल प्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भाव-भंगी; जगह जगह ऐसी ढली हुई और अनूठी व्यंजना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।'

७

तुलनात्मक समीक्षा

कबीर और महादेवी

जिसने 'मसि कागद छूआ नहीं, कलम गहा नहिं हाथ', उस कबीर को प्रखर, किन्तु, नीरस दार्शनिकता में—अद्वैतवाद के ब्रह्म-चिन्तन में—माधुर्यभाव भर कर, अपने हृदय की अनुभूतियों को कहीं निरी भावनात्मक और कहीं कल्पनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने का गौरव, हिन्दी-साहित्य में, सर्व प्रथम प्राप्त हो सका। ब्रह्म, जीव और जगत के सूक्ष्म तथा वास्तविक रहस्य का प्रत्यक्षीकरण उन्हें सुलभ रहा। उनके सम्मुख विश्व की निस्सारता में अपार वेदना और उसमें झुलसते मानव जीवन के करुण दृश्य तथा सर्वशक्तिमान 'साहिब' का अनन्त वैभव एवं अम्लान प्रकाश स्पष्ट था, जिसके कारण उनकी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में विश्व-वेदना-जन्य करुणा और महाचेतन के साक्षात्कार से उत्पन्न दिव्य प्रेम का दर्शन हो उठता है। एक ओर वे संसार की सब वस्तुओं से अपनी वृत्तियों को विमुख करके, ब्रह्म-

चिन्तन करते करते अपने हृदय की अनुराग-प्यास की तृप्ति के निमित्त उससे मिलने की आकुलता में गा उठे :—

'मैं बौरी मेरे राम भरतार, ता कारनि रचि करौं स्यंगार'

ठीक उसी प्रकार जैसे महादेवी जी गाती हैं :—'श्रृंगार कर ले री सजनि'; तो दूसरी ओर आँखों में करुणाश्रु भरे, संसार की क्षणभंगुर सुषमा में बेसुध जीव को उसकी वास्तविकता का भान कराते हुए कहते थे :—

'यहु ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल
दिन दस के व्यवहार कौ, झूठै रंगि न भूल'

× × ×

'एकै हरि के नाँव बिनु, गए जनम सब हारि'

महादेवी की निम्नांकित पंक्तियों का संकेत भी उधर ही है :—

'मानते विष को संजीवन, मुग्ध मेरे भूले जीवन
करो नयनो का उन्मीलन, क्षणिक हे मतवाले जीवन।'

कबीर सन्त थे, उनके बहुत से शिष्य थे और उन्हें थी, अपने आत्मानुभूत ज्ञान के बल, मानव की मोह-निशा को दूर कर देने की अभिलाषा। इस कारण उनके दुःखका ऐहिक पक्ष अपेक्षाकृत अधिक मुखर रहा। उनके अधिकांश उद्गार जीवन के मोहान्धकार को दूर करने के निमित्त ही हैं। रामनाम की महिमा, माया का रहस्य और मानव-चेतन की पवित्रता आदि दिखा कर, कहीं फटकार कर भी, कबीर ने मानवता को जगाना चाहा, भले ही इसके लिये उन्हें अपनी जाग्रति की, सुन्नि अस्नान की गर्वोक्तियाँ भी आवश्यकतानुसार करनी पड़ीं। दुःख का पारमार्थिक पक्ष कम न रहा। ब्रह्म में मिल जाने की उत्सुकता, संसार से ऊब कर अपनी मुक्ति की प्रार्थना में छिपी तड़पन, की अभिव्यक्ति कबीर ने पर्याप्त की।

किन्तु, यद्यपि महादेवी के काव्य में भी हमें दुःख की ये ही दो स्थितियाँ मिलती हैं जिनके कारण एक ओर वे जग की वेदना में अपने छोटे

से सुख को डाले, अपने हृदय में असीम विषाद और अनन्त सूनापन भर कर पीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति करती हैं और दूसरी ओर अपनी वीणा की 'अस्फुट झंकार' को 'विश्व-वीणा' में मिला देने की प्रार्थना करती हैं; फिर भी हम कबीर और महादेवी में बहुत बड़ा अन्तर पाते हैं। कबीर, विश्व की पीड़ा से, अपनी और अन्य की चिरमुक्ति चाहते थे, जबकि महादेवी ने पीड़ा में 'ब्रह्म' को पाकर उसे चिरसुख मान लिया। पीड़ा के प्रति जितनी ममता महादेवी के कोमल प्राण को है, वेदनानुभूति की तीव्रता एवं व्यापकता जितनी उनमें है, वह कबीर क्या अन्यत्र कहीं भी नहीं। जिसका सिद्धान्त हो :—

'पर शेष नहीं होगी यह
मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा
तुममें ढूँढ़गी पीड़ा'

भला फिर उससे बढ़कर पीड़ा को प्यार करनेवाला और कौन हो सकता है? कबीर ने महादेवी के समान, 'भाती तम की मुक्ति नहीं, प्रिय रागों का बन्धन' कहकर कभी भी चिर मुक्ति की उपेक्षा प्रकट नहीं की।

दूसरी बात भिन्नता की यह है कि कबीर का दार्शनिक मस्तिष्क ही उनके काव्य में प्रमुख लगता है, उनके कवि का संगीत कुछ गौण है। उनके वे भाव, जिन्हें उन्होंने मधुर प्रेरणा से व्यक्त किया है, दार्शनिकता में लिपट कर ही रहे। यथा :—

'कहैं कबीर हम व्याहि चले हैं, पुरिष एक अविनासी'

'पुरिष एक अविनासी' द्वारा अपने व्याहि दिये जाने की प्रत्यक्ष विधि के वर्णन में अद्वैतवाद ही सजग है न कि हृदय का माधुर्य।

'मन्दिर माँहि भया उजियारा, ले सूती अपना पीव पियारा'

'पीव पियारा' को लेकर सोने वाली बात हमारे हृदय में मीठी गुदगुदी

अवश्य उत्पन्न कर देती यदि 'मन्दिर माँहि भया उजियारा' कह कर कबीर का बौद्धिक चिन्तन अड़ंगा न लगा देता।

'धनि मैली पिव ऊजला, लागि न सकौं पाइ' कह कर, कबीरदासने, 'धनि' और 'पिव' के मधुर दर्शन में चिन्तन भरकर, उसे केवल विचार की वस्तु बना दिया। उसी प्रकार :—

'एकमेक ह्वै सेज न सोवै तब लग कैसा नेह रे'

इस उद्गार में भी दार्शनिक विचार प्रमुख है। हाँ, जहाँ कबीर अपने मस्तिष्क को गौण बना सके हैं वहाँ उनकी भाव धारा अवश्यमेव हमारे हृदय को सरस बना कर ही छोड़ती है। एक उदाहरण लीजिए :—

नैना अंतरि आचरूँ, निस दिन निरषौं तोहि
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहि।'

परन्तु महादेवी के काव्य में हम उनका हृदय पाते हैं। उनके प्रणयोद्गार विरही जीवन के करुण उच्छ्वास हैं। स्त्री होने के नाते, हृदय की मार्मिक मनुहार, अधीर प्रतीक्षा, अनुनय-विनय, मृदु उपलाम्भ, प्रिय को रिझाने के निमित्त किये गये भाँति भाँति के शिरीष-कुसुम से शृंगार महादेवी को सहज़ प्राप्त हैं। प्रेयसी की सी मधुर भाव-भंगिमायें ज्ञानी कबीर को सम्भव नहीं थीं, सूफियों के प्रभाव तथा लोक-व्यवहार के अनुभव द्वारा प्राप्त विरह की अनुभूति हृदय को उतने गहरे उतारने में सर्वथा असमर्थ है। विरहानुभूति की परख केवल बाह्य माप में उतनी वास्तविक नहीं होती जितनी विरह के कारण उत्पन्न विरही हृदय की भिन्न भिन्न कोमल कम्पनों की अभिव्यक्ति में। सभी जानते हैं कि विरह में अपार वेदना और जलन है किन्तु उसके मर्म का बोध और उसकी अभिव्यंजना उसी के द्वारा सम्भव है जो अपने हृदय में वैसी तड़पन छिपाये हो। कबीर को कभी भी भौतिक विरह बेचैन न कर सका और परिणामतः उन्हें उसके कारण उठी हुई विविध तरंगों का ज्ञान भी

नहीं रहा। यही कारण है कि जब कबीर के उद्‌गार विरह के सामान्य रूप की अभिव्यक्ति करते हैं, वहाँ तक तो उनमें प्रेम की मार्मिक झाँकी प्रस्तुत है; किन्तु जहाँ इससे आगे बढ़कर विरही हृदय की विभिन्न स्थितियों की व्यंजना करने के लिए वे अग्रसर हुये, वहाँ उनका दार्शनिक मानव सजग हो उठा है।

जग को 'सैंबल का फूल' समझ कर कबीर ने कभी भी उस पर मरना सीखा ही नहीं। सर्वात्मवादमूलक ब्रह्मवाद को मानने पर भी उन्हें उस 'साहिब' के असीम सौन्दर्य का दर्शन विश्व की महान विभूतियों में न हो सका। 'हद' के भीतर रूप-प्रेम कबीर को बाँध न पाया, भले ही 'बेहद' जाने पर अनन्त सौन्दर्य उन्हें परमानन्द दे सका। पर महादेवी को प्रकृति सुषमा, उसका उन्माद, लुभाता ही रहा है। अपने इसी व्यापक सौन्दर्य-बोध के कारण ही उनके सम्मुख प्रश्न है कि वह अपना समय किस किस के रूप-दर्शन में लगावें :—

'किसको ढूँ किसको लौटाऊँ
लघु पल ही धन मेरे।'

प्रेम में सौन्दर्य-प्रियता अनिवार्य है। आलम्बन के साथ-साथ प्रणय और रूप-बोध भी सूक्ष्म और अपार्थिव हो उठता है। रहस्यवादी कवि जग की सुषमा में ही उस विराट की झाँकी प्राप्त कर लेता है। सूफियों का रूप-दर्शन भी व्यापक रहा। किन्तु कबीर को यह सौन्दर्य-प्रियता, जो रहस्यवाद के लिये आवश्यक है, न मिल सकी क्योंकि उनकी पैनी दृष्टि विश्व-सौन्दर्य के झीने आवरण को पार करती हुई, उसके शून्यत्व का भान करा के उन्हें विरक्त बना डालती रही। इसलिये कबीर महादेवी के समान जग के बारे में गा न सके :—

'तोड़ देता खीझ कर जब तक न प्रिय यह मृदुल दर्पण
देख ले उसके अधर सस्मित, सजल दृग, अलख आनन'

× × ×

कबीर रहस्यदर्शी मात्र थे भी नहीं। रहस्यवाद की सीमा में वे घुसे अवश्य थे किन्तु उनका अधिकांश इसके बाहर था। सम्पूर्ण कबीर कई 'वादों' में भी कदाचित समा न पायेंगे। और महादेवी की काव्य-भूमि तो इसी सीमा में है। अतः रहस्यवाद के जो वैभव महादेवी की कृतियों में हैं वे कबीर के काव्य में नहीं।

कला की दृष्टि से देखने पर तो भिन्नता और भी बढ़ जाती है। कबीर सरल हृदय के सिद्ध महात्मा थे। अपने आत्मानुभूत सत्य को सारल्य पूर्ण व्यक्त कर देने में उनको सन्तोष रहा। बिना किसी सजधज के, उनके अक्खड़ हृदय अथवा मस्तिष्क में जो आया उसे उन्होंने व्यक्त कर दिया। पर महादेवी के काव्य में आज के युग की कला-प्रियता, पुंजीभूत है जिसमें ढलकर ही उनके उच्छ्वासों को निकलना पड़ता है; कलाकारों के रुदन में भी एक कला रहती है। अतएव कला का जो लावण्य महादेवी के काव्य में मिलता है वह कबीर के उद्‌गारों में नहीं पर जो साधुता कबीर के काव्य में झलकती है वह महादेवी की कृतियों में नहीं।

अस्तु, कबीर और महादेवी की दार्शनिक चिन्तन-धारा की समानता में हृदय-भेद, प्रत्यक्ष जीवन की घटनाओं, और युग-वैशिष्ट्य के कारण कुछ भिन्नता स्वभावतः मिल जाती है। नारी हृदय ने, महादेवी के लिये, प्रणय की भाव-भंगिमाओं को सुलभ रखा जिनके कारण उन्होंने अपने उद्‌गारों में नूतनता भर दी है और ज्ञानी 'पुरुष' ने कबीर के लिये जो ब्रह्म चिन्तन की प्रखरता प्रस्तुत की वह महादेवी को न मिल सकी। परन्तु कबीर और महादेवी की वेदना, प्रणयानुभूति आत्मानुभूत है, इसमें सन्देह नहीं। इस कारण यदि हम चाहें तो महादेवी के रहस्यवाद को कबीर के रहस्यवाद का परिवर्द्धित, परिवर्तित एवं परिष्कृत रूप कह सकते हैं। अद्वैतवाद के ब्रह्म-चिन्तन और सूफियों के भावना-

त्मक रहस्यवाद के योग की ओर कबीर ने जो प्रयत्न किया वह काव्य की आधुनिक विशेषताओं के साथ महादेवी की कृतियों में पूर्ण सफल होकर अपने वर्ग में अकेला बन गया है।

मीरा और महादेवी, दोनों कवयित्रियों की वेदना आत्मानुभूत है; दोनों कई युगों की विरहिणी हैं। 'मेरी उणकी प्रीति पुराणी' कह कर मीरा ने विरह की उसी चिर पुरातनता की ओर संकेत किया है जिसकी अभिव्यंजना महादेवी की निम्नांकित पङ्क्तियों में है :—

मीरा और महादेवी

'उस सोने के सपने को
देखे कितने युग बीते'

और तभी से 'उस प्रिय' बिना दोनों को जीवन भर चैन नहीं। चिर-विरह की यही तड़पन दोनो कवयित्रियों के हृदय को तरल बनाने में सफल रही है। 'गगन मँडल पै सेज पिया की, किस विधि मिलणा होइ' कहने वाली मीरा जिस प्रकार 'रंग महल' में बैठ कर 'अँसुवन की माला' गूँथने में बेसुध थी उसी प्रकार 'अलि कैसे उनको पाऊँ' कहती हुई महादेवी के 'आँखों के कोष हुए हैं, मोती बरसा कर रीते'। विरह-वेदना की सभी अन्तर्दशाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति करने में दोनों एक समान है। कुछ उदाहरण लेकर आगे बढ़िए :—

प्रिय को मनाने के लिये, उसे अपनी कहानी सुनाकर करुणार्द्र करने के लिये, विरहिणी उसके पास पत्र भेजती है; किन्तु प्रेमाधिक्य के कारण लिखना कठिन हो जाता है; प्रिय की स्मृति आते ही उसकी दशा विचित्र हो जाती है। देखिये मीरा की विवशता :—

'पतियाँ मैं कैसे लिखूँ, लिखिही न जाइ
कलम धरत मेरो कर कंपत, हिरदो रह्यो घर्राई।'

महादेवी की निम्नांकित पंक्तियाँ भी पढ़िये :—

'कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती ?
\+ \+ \+
मैं अपने बेसुधपन में
लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती।'
\+ \+ \+

युग युग से, विरहिणियों को बादल प्रिय-सन्देश-वाहक प्रतीत होता रहा है। 'दरद दीवाणी' मीरा उस 'मेघदूत' को देखकर कह देती :—

'मतवारो बादर आए रे, हरि को सनेसो कबहुँ न लाए रे।'

और महादेवी भी आज उसी से पूछती रहती हैं 'लाए कौन सँदेश नये घन ?'

रात्रि-जागरण विरह का मधुर सत्य है। मीरा कहा करती थी :— 'पिया बिन मेरी सेज अलूनी, जागत रैण बिहावै', महादेवी, की प्रतीक्षा भरी आँखों का दर्शन कीजिये :—

'तरल आँसू की लड़ियाँ गूँथ
इन्हीं ने काटी काली रात
निराशा का सूना निर्माल्य
चढ़ाकर देखा फीका प्रात'
× × ×

स्वप्न में प्रिय को देख कर, और फिर जग कर, मीरा गा उठती थी :—

'आये मेरे सजना फिर गये अँगना, मैं अभागण रही सोइ रे'

महादेवी पछताती रहती हैं :—

'मिलन बेला में अलस तू, सो गई कुछ जाग कर जब
फिर गया वह, स्वप्न में, मुस्कान अपनी आँक कर तब।'
× × ×

'रमइया बिनि रह्यो न जाइ', 'पिया बिनि रह्यो न जाइ', आदि मीरा के उद्‌गारों में जिस मिलनोत्सुकता और विरह-व्यथा का संकेत है उसकी व्यंजना महादेवी के उद्‌गारों में देखिये :—

'दूर कितना है वह संसार
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

\+ + +

'अन्तरम की छाया समेट
मैं तुझमें मिट जाऊँ उदार !
फिर एक बार बस एक बार।'

धीरे धीरे इन दोनों विरहिणियों को अपने प्रिय के आने का अनुभव भी होने लगा। मीरा ने उस 'पिया' की आवाज़ सुन कर प्रसन्नता में गाया था :—'सुनी हो हरि आवन की आवाज़'; परन्तु महादेवी का छलनामय अपनी आवाज़ को छिपाये नीरव गति से अवश्य आ रहा है, इसका महादेवी को अनुभव है, यथा :—

'पुलक-पंखी विरह पर चढ़ आ रहा है मिलन मेरा'

\+ + +

और अन्त में,—

'सहेलियाँ साजन घरि आया हो
बहुत दिना की जोवती, विरहिणी पिव पाया हो'

गानेवाली मीरा के समान महादेवी ने भी गा दिया :—

'सजनि प्रिय के पद-चिन्ह मिले'

× × ×

अब इन दोनों कवयित्रियों के बीच भिन्नता की रेखा भी देख लेनी चाहिए। मीरा के काव्य की पृष्ठभूमि है कृष्णलीला एवं गोपियों के प्रेम को व्यक्त करने वाला भक्त-साहित्य। मीरा के 'पिया' वही अपने

चिर-परिचित कृष्ण थे जो 'जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावैं, बंसी में गावैं मीठी बानी।' इसलिए उसके प्रेम का आलम्बन निराकार होते हुए भी उतना ही सगुण साकार बन सका जितना लौकिक प्रिय हुआ करता है। परिणामतः उसकी प्रणयानुभूति की अभिव्यक्ति निरी भावनात्मक और लौकिकता के स्तर पर भी उतर कर दिव्य बनी रह सकी। भगवान के अवतारवाद के प्रति हमारी आस्था, और श्रीकृष्ण की प्रेम लीलाओं से हमारा कई शताब्दियों का परिचय हमें मीरा की तड़पन में अपार्थिवता का दर्शन और भी सुलभ रखा। कृष्ण प्रेम के एक ऐसे दिव्य आलम्बन बन चुके हैं कि उनके प्रति प्रदर्शित किये गये प्रेम में वासना की शंका उठ नहीं पाती। विद्यापति ने कृष्ण के प्रति अपना प्रेम न प्रकट करके उन्हें एक नायक बना कर अपने काव्य की रचना की, कदाचित इसीलिए उसमें वासना हँसती है; फिर भी उनके 'एकहि पलँग पर कान्ह रे' सदृश उद्गारों में कुछ लोगों के लिए रहस्यवाद का मसाला मिल जाता है, यह है कृष्ण के नाम का चमत्कार। अवतारवाद में जिनकी अनास्था है वे मीरा के प्रणयोद्गारों को किस दृष्टि से देखेंगे यह बतलाना मेरे लिए, आस्तिकता के कारण, कुछ कठिन है। मीरा का निम्नांकित एक उद्गार सुनिए :—

'ओह झिरमिट माँ मिल्यौ साँवरो, खोल मिली तन गाती'

'झिरमिट (झुरमुट) में तन गाती (शरीर का आवरण) खोल कर 'पिया' से मिलने वाली क्रिया लौकिक प्रेम व्यापार सी लग कर भी 'साँवरो' के कारण दिव्य है। अतएव दाम्पत्य प्रेम के रूपक से ही नहीं वरन् उसके सांसारिक व्यापारों के माध्यम से भी अपने प्रेम की अभिव्यंजना करने में मीरा हमारे हृदय के अधिक निकट रही। उनके उद्गार प्रत्येक प्रेमी के उद्गार बनते हुये भी अलग रह सके। इन सबका परिणाम यह हुआ कि मीरा के पदों में दिव्यता के साथ ही

जितनी प्रेम-पीर भरी जा सकी और उसके द्वारा हमारे हृदय में जितना माधुर्य उतर सका, उतना महादेवी के काव्य द्वारा नहीं।

क्योंकि महादेवी का 'निर्मम' प्रिय, मीरा के 'प्रिय' की भाँति सगुण साकार-निराकार न हो कर निराकार सगुण ही रहा। वह न तो वंशी बजा कर प्रेमिका को लुभा सकता और न उसके साथ लौकिक दाम्पत्य व्यापार ही सम्भव है। उसका दर्शन केवल अनुभव की बात है, कल्पना की विभूति है। उसकी मधुर झलक, उसके साथ लुका-छिपी खेलना, उसे आलिंगन में बाँध कर बेसुध होना तथा उसके अंक में बैठ कर खिल उठना आदि सभी व्यक्तिगत अनुभूति की बातें हैं। उसके प्रति अपने प्रणय को व्यक्त करने में दाम्पत्य भाव का ही रूपक सम्भव है उसके प्रत्यक्ष व्यापार आदि का नहीं। यही कारण है कि महादेवी की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में कल्पना का अधिक हाथ रहा है। कल्पना का यही आवरण हमारे हृदय को बेसुध होने में कुछ कठिनाई प्रस्तुत करता है। 'उर में पावस दृग में बिहान' वाली महादेवी के उच्छ्वास और उनकी अभिव्यक्ति सरल नहीं है।

इसी स्थल पर मैं इतना और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मीरा की साधुता और उनके मधुर हृदय की अनुभूतियाँ वास्तविक हैं; उनकी दिव्यता के बारे में मुझे न तो कभी शंका रही और न आज ही है। मैंने ऊपर जो कुछ लिखा है उसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि मीरा के पदों का प्रभाव हमारे हृदय पर जितना गहरा पड़ता है उतना प्रभाव महादेवी के गीतों का न पड़ने का कारण महादेवी की अनुभूतियों की अवास्तविकता नहीं है। दोनों की अनुभूतियाँ हैं एक सी किन्तु उनकी अभिव्यक्ति भिन्न भिन्न माध्यम से है, एक में भावना अधिक और कल्पना कम तो दूसरी ओर कल्पना का रंग अधिक है। अतः यह कहना कि महादेवी के काव्य में मीरा के पदों की भाँति हृदयस्पर्शिता न होने के कारण दोनों की अनुभूतियाँ समान नहीं हैं, अविचार होगा।

महादेवी और मीरा में एक अन्तर और है। मीरा के काव्य में रहस्यवाद है ही नहीं। अद्वैतवाद के ब्रह्म चिन्तन में भक्तों-सी सगुण भावना भर कर ही रहस्यवाद चलता है। उसका ब्रह्म कल्पना में सगुण है, उसमें ब्रह्म को अवतारी रूप में देखने वाली भावना नहीं। मीरा के 'प्रिय' सगुण-से नहीं वरन् सगुण थे। भले ही मीरा के कुछ उद्गार रहस्यवाद के भीतर आते हों किन्तु मुख्यतया वह भक्ति-मार्ग की प्रेमिका ही थीं। मीरा के प्रति अपनी श्रद्धा को बोझिल बना कर ही कोई उनके पदों में रहस्यवाद की झाँकी ले सकेगा। और महादेवी का कोई ऐसा उद्गार नहीं, कोई ऐसी विचार-धारा नहीं, जो रहस्यवाद की सीमा के बाहर हो।

'नभ-धरा के वेदना-पय से पली' महादेवी के हृदय में करुणा का जो अविछिन्न एवं व्यापक श्रोत उमड़ता है वह मीरा के हृदय में नहीं। बादल की भाँति नित घिरने और घिर घिर कर नित झरने की साधों वाली महादेवी की अभिलाषा है कि वह स्वयं को मिटा कर जग का सम्पूर्ण विषाद धो लें। करुणा के प्रभाव से ही इन्होंने अद्वैतवाद की 'मुक्ति' को, 'गौतम के निर्वाण' को, नये रूप में प्रस्तुत किया है। उनका मत है कि मिट कर कण कण में समा जाना ही जीव की चिर-मुक्ति है। निम्नांकित पंक्तियों का संकेत देखिए:—

'मिटना ही तुमको छू पाना'
+ + +
'एक मिटने में सौ वरदान'
+ + +
'यह चिर अतृप्त हो जीवन
चिर तृष्णा हो मिट जाना।'

'गिरधर के रँग राती' मीरा को भी कबीर की भाँति ही व्यापक सौन्दर्यबोध न प्राप्त हो सका। कृष्ण के रुढ़िबद्ध रूप का ही माधुर्य

उसने लूटा। परन्तु महादेवी ने, जैसा कि कई बार स्पष्ट कहा जा चुका है, उस अज्ञात सौन्दर्यवान की छवि का व्यापक दर्शन किया है। व्यापक सौन्दर्य-वोध के अभाव से ही मीरा के काव्य में कला की वह विभूति निखर न सकी जो महादेवी की कृतियों में। फिर भी गीत लिखने में दोनों सफला हैं।

'प्रसाद और महादेवी'

प्रसाद के 'करुणा कलित हृदय' की 'विकल रागिनी में महादेवी की सी असीम वेदना भरी थी। विरह की जो हूक महादेवी को है वह 'प्रसाद' को भी थी। दोनों को वेदना से प्रेम था; पढ़िए प्रसाद की निम्नांकित पंक्तियाँ :—

'तुम ! अरे, वही हाँ तुम हो
मेरी चिर—जीवन—संगिनि
दुख वाले दग्ध हृदय की
वेदने ! अश्रुमयि रंगिनि !'

'उच्छ्वास और आँसू' में विश्राम पाने वाले 'प्रसाद' की अरमान थी विश्व की सम्पूर्ण व्यथाओं को चुन लेने की :—

'चुन-चुन ले रे कन-कन से
जगती की सजग व्यथायें

उसी प्रकार 'वेदना मधु-मदिरा की धार' कहने वाले महादेवी गाती रहती हैं :—

'माँग रहा है विपुल वेदना
के मन प्याले पर प्याले'

\+ + +

'प्रसाद' और महादेवी के इस गहरे विरह का कारण है सुन्दरतम की क्षणिक झलक। एक बार मिलकर उस निष्ठुर का छिप जाना

असीम वेदना का कारण हो गया। उसके छिपते ही निराश 'प्रसाद' ने बैठते हृदय से कहा था :—

'निष्ठुर ! यह क्या, छिप जाना ?'

\+ + +

और महादेवी ने रो रो कर गाया :—

'—और फिर रहे न एक निमेष,
लुटा चुपके से सौरभ-भार;
रह गई पथ में बिछ कर दीन
दृगों की अश्रुभरी मनुहार—
मूक प्राणों की विफल पुकार।'

× × ×

विरह-जन्य वेदनानुभूति के अतिरिक्त भी 'प्रसाद' और महादेवी को हम एक समान पाते हैं। सौन्दर्य-बोध और रूपांकन में दोनों की गति दूर तक है। विश्व के कोने कोने में छिपा सौन्दर्य इन चारो आँखों से बच न पाया; और उसकी अभिव्यक्ति भी इन दोनों ने बड़ी तन्मयता और सजगता से की है। इस दिशा में कौन बढ़ गया है, यह कहना, मेरे लिए तो अवश्य, कठिन है। कला-प्रियता और उसके द्वारा आत्मानुभूत रहस्य को व्यक्त करने में सफलता दोनों को प्राप्त है।

महादेवी की भाँति प्रसाद के कुछ उद्गारों में 'रहस्यवाद' मानना पड़ेगा। कुछ उदाहरण लीजिए :—

'भरा नयनों में मन में रूप
किसी छलिया का अमल अनूप
जल, थल, मारुत, व्योम में जो छाया है सब ओर
खोज-खोज कर खो गई मैं, पागल प्रेम विभोर।

\+ + +

तुम सत्य रहे चिर सुन्दर
मेरे इस मिथ्या जग के'

\+ + +

'गौरव था, नीचे आये
प्रियतम मिलने को मेरे'

\+ + +

इतनी समानताओं के होते हुए भी 'प्रसाद' और महादेवी के काव्यों में भिन्नता की रेखा भी स्पष्ट की जा सकती है। महादेवी केवल गीत-प्रगीत की कवयित्री हैं जबकि 'प्रसाद' गीत के कवि होकर उपन्यासकार, नाटककार और निबन्ध-लेखक भी हैं। यद्यपि महादेवी ने भी कुछ गद्य रचना की है किन्तु प्रधानतया वे गीत-कवयित्री ही ठहरती हैं। यही कारण है कि 'आँसू-झरना' के बाद 'प्रसाद' जम कर अपने विरही हृदय का गीत सुना न सके, हाँ नाटकों में जहाँ कहीं भी उन्हें अवकाश मिला, वहाँ वे तुरत गा उठते थे। महादेवी को अपने हृदय की बातको संगीत में ढालकर सुनाने के लिए अवकाश था। परिणामतः इनके काव्य में 'प्रसाद' की अपेक्षा 'रहस्यानुभूति' का पर्याप्त विकास हो सका है।

यद्यपि मैं उन व्यक्तियों के स्वर में अपना स्वर न मिला सका जो 'प्रसाद' को 'छायावादी'-'रहस्यवादी न कह कर उन्हें केवल 'मनुष्यों के और मानवीय भावनाओं के कवि' मानते हैं। 'प्रसाद' के काव्य में यदि छायावाद और रहस्यवाद नहीं मिलता, फिर या तो, साहित्यिकों के इस वाग्जाल का अन्त होना चाहिए अथवा एक बार इन सांकेतिक शब्दों की परिभाषा निश्चित करके उसके सम्मुख अपनी साम्प्रदायिकता की भावना को दबाना पड़ेगा। यदि इन शब्दों के अर्थों को इसी प्रकार दिन प्रतिदिन खींच खाँच कर उन्हें विद्यार्थियों के स्पर्श से दूर रखा जायगा तब तो काव्य का अध्ययन ही व्यर्थ है। मैं भी मानता हूँ कि

'प्रसाद' मानवीय भावनाओं के कवि हैं; किन्तु इसके परे वह और कुछ नहीं हैं यह मैं नहीं मान पाता। जिसमें मानवीय भावनायें न होंगी, मानवीय सौन्दर्य के प्रति अनुराग न होगा, मनुष्योचित हृदय की कम्पन न होगी, क्या उसके हृदय में रहस्यानुभूति जग सकेगी ?

प्रसाद मानवता के प्रेमी थे, मानवीय भावनाओं को व्यक्त करने में उन्होंने साहस और रुचि का परिचय दिया। इससे आगे बढ़कर उन्होंने रहस्यदर्शन भी किया। उनकी रहस्यवादी अनुभूतियों को न परख कर उनमें केवल मानवीय वृत्तियों मात्र की झाँकी लेना वर्तमान युग का एक वितण्डा ही होगा।

खैर, अपने विषय पर आइए। 'प्रसाद' रहस्यवादी मात्र नहीं कहे जा सकते, उनकी कृतियों में शैवमत का आनन्दवाद भी कम नहीं है; 'कामायनी' का साध्य वही है। समरसता का सिद्धान्त 'प्रसाद' के जीवन का सत्य अन्वेषण है। मानव-जीवन की उलझनों को सुलझाने में 'प्रसाद' का कवि प्रयत्नशील रहा है। सौन्दर्य-प्रियता और रूपांकन की चर्चा हो चुकी है; अभिव्यंजना की नूतन शैली भी प्रसाद के ग्रन्थों में है। इन सब कारणों से उन्हें किसी 'वाद' में बाँधा नहीं जा सकता है जब कि महादेवी का क्षेत्र निश्चित है, और वह है रहस्यवाद।

तुलनात्मक समीक्षा प्रायः उन्हीं कवियों की समीचीन होती है जिनके भाव एवं विचार एक हों अथवा कुछ मिलते जुलते हों। कबीर, मीरा

महादेवी और हिन्दी के अन्य कवि

और 'प्रसाद' जी के अतिरिक्त और कोई हिन्दी का ऐसा कवि नहीं है जिसके साथ महादेवी की तुलना करनेका प्रयत्न किया जा सके। 'घनानन्द' के काव्य में प्रेम की कसक और अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यंजना अवश्य है किन्तु उनके उद्गार पृथ्वी को छोड़कर आगे बढ़ते नहीं प्रतीत होते। उन्होंने विरही मानव हृदय की चुभती अभिव्यंजना प्रस्तुत

की है और इस दिशा में वह औरों से बहुत आगे भी हैं। परन्तु महादेवी की सी रहस्य-भावना उनमें थी ही नहीं और इसीलिये दोनों की तुलनात्मक समीक्षा उचित नहीं जँचती। आधुनिक युग में पन्त जी ने अपने हृदय को प्रकृति-सुषमा की ओर लगाया। उसके पीछे छिपी किसी चिर सुषमा का उन्हें आभास भी हुआ, किन्तु उसकी ओर दूर तक इनका प्रेम जा न सका, और फिर तो मानव जीवन की दुर्दशा ने इनका ध्यान अपनी ओर खींच कर इनसे कहा :—

'देखो भू को वीर-प्रसू को'

तब से इनके उद्‌गार समाज के वैषम्य और मानव जीवन के रहस्य के बारे में निकले, हाँ कभी प्राकृतिक सुषमा की ओर देख भी लिया करते हैं; उस समय वे कदाचित सुन्दरतर कवि बन उठते हैं। महादेवी का भाव-लोक 'पन्त' को न मिला। 'निराला' के काव्य में भी रहस्यवाद का रूप निखर न सका, और मेरा तो मत है कि उसमें रहस्यवाद है ही नहीं। दार्शनिकता और अभिव्यंजना शक्ति के नैरात्म्य के अतिरिक्त उनमें भावुकता और मधुर अनुभूतियाँ भी हैं किन्तु रहस्यवाद की 'भाव-भरी कल्पना' और उसका मचलता हृदय नहीं।

महादेवी और सूफी कवि

रही बात प्रेमाख्यानक सूफी कवियों की। सूफियों का भावनात्मक रहस्यवाद महादेवी के रहस्यवाद से कई बातों में मिल कर भी भिन्न है। जहाँ तक प्रणय की अनुभूतियों और सौन्दर्य-बोध का प्रश्न है वहाँ तक दोनों में समता ही है। प्रेम की पीर, प्रिय-मिलन की आकुलता, तन्मय साधना और हृदय का माधुर्य जैसा सूफियों में है उसी प्रकार महादेवी में भी। किन्तु चिन्तन और प्रतीकोंमें दोनों सर्वथा पृथक है। महादेवी के रहस्यवाद का आधार है भारतीय अद्वैतवाद का ब्रह्म-चिन्तन जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि उसी एक से उद्भूत और व्याप्त है—जीव,

ब्रह्म और माया सबकी अलग अलग स्थिति नहीं है। किन्तु सूफियों के चिन्तन में इन बातों का इतने दूर तक विचार नहीं है। उनकी अपनी निजी चिन्तन-धारा है जो 'खुदावाद' से प्रभावित है। दूसरी बात प्रतीकों की है। 'बुलबुल' सूफी-रुह का प्रतीक है जो महादेवी को मान्य नहीं है। सूफी किसी सांसारिक व्यक्ति के माध्यम से भी अपने प्रेम को निखारना ठीक समझते रहे। मजनू ने 'लैला' में अल्लाह को देखा और जायसी 'तुम हुत देखौं प्रीतम छाया' कह कर उपर्युक्त सिद्धान्त को माना है। पर हमारे यहाँ यह विचार उपेक्षणीय ही रहा। इसीलिये कई समानताओं के होते हुए भी अच्छा यही है कि हम महादेवी को सूफियों के रहस्यवाद से अलग रखें।

अन्त में, मैं यह स्पष्ट कह देना भी आवश्यक मानता हूँ कि महादेवी का काव्य ही शुद्ध रहस्यवाद के भीतर स्थान पा सकता है, न तो इसके बाहर उन्होंने कभी पग बढ़ाया और न विदेशी प्रलोभनों को ही उसके भीतर घुसने दिया। समय की गति के साथ महादेवी के इन उच्छ्वासों का मूल्य बढ़ता ही जायगा ऐसा अपना अनुमान है।

प्रकृति और म

मानव प्राण और वाह्य प्रकृति के बीच एक ऐसा रहस्य है कि मानव कभी भी प्रकृति को भूल नहीं सकता। शिशु के प्रपंच-विहीन जीवन में, अपने मोहक रंगों में थिरकती हुई तितली, नटखट पवन के स्पर्श से अंग अंग में बल खाने वाली मृदुल लतिकायें, चाँदनी के मधुर आलिंगन में मुस्कराता हुआ मयंक, अपने मदिर यौवन-दर्शन से कण-कण में उन्माद जगा देने वाली अरुणा, वसंत के वैभव-अंक में पली हुई आम्र-मंजरियों की सुषमा का जो महत्व है वह कोमल रमणियों की भाव-भंगिमाओं में नहीं। संसार के प्रपंच में पड़ने पर अवश्य मानव-प्राण मानवीय विभूतियों में ही अधिक आनन्द लेना सीखता है किन्तु वह सर्वथा प्रकृति को उपेक्षा भरी दृष्टि से नहीं देख सकता। प्रिय-युग्मों के मधुर विहार के लिये जितना उपयुक्त चिर यौवन-सुषमा वाली प्रकृति की गोद है उतना मानव-निर्मित भव्य-भवन नहीं। नूरजहाँ के अतुल नारी-सौन्दर्य पर दीवाने जहाँगीर को सरिता के किनारे और चाँदनी के शृंगार की अपेक्षा थी ही। विश्व के प्रेमी जीवन के अनोखे एवं पवित्र आदर्श-युग्म राधा-कृष्ण का रास-स्थल मणिजटित अट्टालिका

न होकर करील के कुंज थे। बात यह है कि प्रकृति की अनन्त सुषमा के बीच मानव-सौन्दर्य निखर कर अमूल्य हो उठता है। अतः मानव-लोक इस प्रकृति को भूल कैसे सकता है?

इतना ही नहीं अपितु भावातिरेक के कारण प्रकृति के जड़-लोक में मानव अपने चेतन को बिठाकर उसे सदा दुःख-सुख की सहचरी बनाता रहा है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी ने भी अपनी प्राणवल्लभा के विरह में 'खग, मृग, मधुकर श्रेणी तथा लता-वृक्ष' आदि में मानव-चेतन को मुखरित करना चाहा। प्रकृति को मानवी रूप देना सृष्टि के आदि से ही आरम्भ हुआ। साहित्य ने प्रकृति के इस मानवीकरण को अपनी कला से और भी सजा कर आनन्द का दर्शन किया, जिसके कारण ही उसके अंग विशेष की संज्ञा छायावाद पड़ी। रहस्यवादी कलाकार यतः छायावाद को अंक लगाये, अपनी रहस्यात्मकता में आगे बढ़ते रहते हैं, अतः प्रकृति-विषयक उनके दृष्टि-कोण में छायावाद का प्रकृति को मानवीय रूप देकर और उसमें अपनी छाया देख कर आनन्दित होना तो है ही, साथ साथ प्रकृति की रहस्यमयी स्थिति भी सम्मिलित है।

महादेवी जी ने प्रकृति के सौन्दर्य का दर्शन 'नीहार' के अस्पष्ट, किन्तु अपनी अस्पष्टता में अधिक मोहक, युग से लेकर 'दीपशिखा' के, स्वप्नों से पुलकित और मिलन-प्रभात को अंक में लिये गहनतम होने वाली निशा के अन्धकारपूर्ण, युग तक, स्थिर चित्त से किया है। इसी कारण उन्होंने प्रकृति को कई रूपों में देखा है। सुधा से-सुषमा से-सुन्दर, नये पल्लव का घूँघट डाले, अपना अछूता मकरन्द लिये फूल; सौरभ पीकर बेसुध सा मन्द समीर; 'नीलम-मन्दिर की हीरक-प्रतिमा (चपला) और उसके वातायन (तारे'; छवि का मकरन्द बरसाने वाले इन्दुमणि से जुगनू; नयनों में सोना आँजती हुई रजनीगन्धा और अपनी अनुपम श्री में उन्मत्त वसन्त वाली प्रकृति का दर्शन महादेवी जी ने किया है। प्रकृति

को मानवीय रूप में देख कर उसकी सुन्दरता की कलात्मक अभिव्यक्ति करने वाले छायावादी दृष्टिकोण से कवयित्री प्रकृति का एक चित्र खींच रही हैं ।

रूपसि तेरा घन-केश-पाश !
श्यामल श्यामल कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश ।

\+ + +

कम्पित हैं तेरे सजल अंग
सिहरा सा तन है सद्यस्नात ।
भीगी अलकों के छोरों से
चूतीं बूँदें कर विविध लास ।
रूपसि तेरा घन केश-पाश

\+ + +

उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है
बक-पातों का अरविन्द-हार;
तेरी निश्वासें छू भू को
बन बन जाती मलयज बयार;
केकी-रव की नूपुर-ध्वनि सुन
जगती जग की मूक प्यास
रूपसि तेरा घन केश-पाश !

तारकित नभ सेज पर जिसे रश्मि-अप्सरियाँ जगाती हैं, बयार अगरु-गन्ध ला लाकर जिसके विकच-अलकों को भर देती है, जिसके जावक-रचे मृदुल पद को चूम चूम कर श्वेत बादल गुलाबी बन उठते हैं (मस्त हो जाते हैं) जिसका दृष्टि-निक्षेप विश्व को रूप-रंगों से भर देता है, वह मुकुल-दशना, मधुप-रशना, राग छलकाती हुई अरुण-वसना (उषा) ने भी कवयित्री को किसी दिन अवश्य लुभाया था। देखिये :—

ओ अरुण वसना!
तारकित नभ-सेज से वे
रश्मि-अप्सरियाँ जगातीं;
अगरु-गन्ध बयार ला-ला
विकच अलकों को बसाती!
रात के मोती हुये पानी हँसी तू मुकुल-दशना।
छू मृदुल जावक-रचे पद
हो गये सित मेघ पाटल
विश्व की रोमावली
आलोक-अंकुर सी उठी जल
बाँधने प्रति ध्वनि बढ़ीं लहरें बजी जब मधुप-रशना।

* * *

अनुराग सुहाग भरी सन्ध्या के भी रूप-चित्रों को देखते चलिये।

सज केशर-पट तारक-बेंदी,
दृग अंजन मृदु पद में मेंहदी,
आती भर मदिरा से गगरी
सन्ध्या अनुराग सुहाग भरी;

* * *

नव इन्द्र धनुष सा चीर
महावर अंजन ले,
अलि-गुंजित मीलित पंकज—
—नूपुर रुनझुन ले।

× * ×

बसन्त-रजनी का जो रूप हमारी कवयित्री ने आँका है उस पर कला को भी अपनी कमनीयता और विभूति का गर्व होगा। अपनी मनो-

हारिणी छटा में लिपटी, प्रिय-मिलन के निमित्त उत्सुक हृदय वाली प्रेम नत्त युवती की भाँति वसन्त-रजनी पुलकती, सिहरती, विहँसती ौर अपने सम्पूर्ण श्रृंगार में सुहावनी किसे लुभा न सकेगी :—

धीरे धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त-रजनी।

तारकमय नव वेणी बन्धन,
शीश फूल कर शशि का नूतन
रश्मि-वलय सित घन अवगुण्ठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी।
पुलकती आ वसन्त रजनी।

* * *

क्या इन रूप-चित्रों को देख कर यह कहा जा सकता है कि रहस्याराधना में मग्ना महादेवी को प्रकृति का अपना सौन्दर्य लुभा न सका? फिर भी यदि कुछ लोग ऐसा कह ही बैठें तो उसकी दवा क्या है—साहित्यिक प्रलाप बिना उपचार का रोग है। हाँ, इतना अवश्य है कि कवयित्री के प्रकृति विषयक अन्य दृष्टिकोण भी रहे हैं।

प्रकृति की विभूतियों को, एवं प्रणय-व्यापार को देख कर उनके हृदय में मधुर गुदगुदी उठती रही और किसी का अभाव उन्हें खटकने लगता था; ठीक वैसे ही जैसे बसन्त की मन्द सौरभ-सनी बयार के स्पर्श से यौवन, पता नहीं क्यों, एक बार शिशु की भाँति मचल उठता है। अज्ञात-प्रिय के प्रति प्रणयानुभूति की प्रथम जागृति महादेवी जी को तब हुई जब उन्होंने निशा की अलकों को चाँदनी में धोते हुये (निशापति) चन्द्रमा को तथा धूलि में अपने तुहिन कणों के हार को बिखराने वाले प्रेम-दीवाने पवन को देखा। जिस दिन चन्द्रमाँ ने उजि-

यारी-अवगुण्ठन में लिपटी (अपनी प्रेयसी) रजनी को (प्रेम भरी दृष्टि से) देखा उस दिन से कवयित्री भी अपने अज्ञात प्रिय के चरणों की रेखा ढूँढ़ रही हैं।

यही नहीं अपितु प्रकृति उसी प्रिय को रिझा रही है, उसी के साथ क्रीड़ा कर रही है और उसी से मिलने के लिये अपने क्षण-क्षण नूतन शृंगार में व्यस्त है जिसकी खोज कवयित्री के मचलते हृदय को है :—

घूँघट पट से झाँक सुनाते
अरुण के आरक्त कपोल
'जिसकी चाह तुम्हें है उसने
छिड़की मुझ पर लाली घोल'।

* * *

वे मन्थर सी लोल हिलोरें
फैला अपने अंचल छोर,
कह जातीं 'उस पार बुलाता-
है हमको तेरा चितचोर'।

\+ \+ \+

परन्तु एक ही प्रिय से रहस्य भरे प्रणय-व्यापारों वाली दोनों, प्रकृति और महादेवी-एक दूसरे के पथ में विघ्न-बाधा बन कर खड़ी नहीं होतीं; किन्तु सहेली की भाँति सान्त्वना दिया करती हैं। कवयित्री प्रकृति को सावधान करती हुई पूछती हैं :—

झिलमिल तारों की पलकों में
स्वप्निल मुस्कानों को ढाल,
मधुर वेदनाओं से भर के
मेघों के छायामय थाल;

रँग डाले अपनी लाली में
गूँथ नये ओसों के हार,
विजिन विपिन में आज बावली
बिखराती हो क्यों शृंगार ?

और कभी प्रिय की प्रतीक्षा में निर्निमेष नयनोंवाली महादेवी जी से प्रकृति ही सहानुभूतिवश पूछ पड़ती कि ये तुम्हारे नेत्र अविराम किसे देख रहे हैं।

महादेवी जी के दुःख की छाया प्रकृति की विस्तृत, छाती (नभ) पर पड़ी है, उनके दुःख से ही तारों की पलकें गीली हैं, उन पर मेघ रोते हैं और वायु अपनी रुँधी आहें लिये घूमता रहता है :—

'नभ पर दुख की छाया नीली
तारों की पलकें हैं गीली
रोते मुझ पर मेघ
आह रूँधे फिरता है बात री

कनक-थाल में गुलाबी मेघ रख कर, बालारुण का कलश लिए विहग-रव का मंगल गान करता प्रिय-पथ से उसकी कहानी महादेवी को सुनाने प्रभात आया करता है :—

'धर कनक-थाल मेघ
सुनहला पाटल सा
कर बालारुण का कलश
विहग रव मंगल सा,
आया प्रिय-पथ से प्रात-
सुनाई कहानी नहीं
मैं प्रिय पहचानी नहीं'

अपने रंगीन चीर में सुशोभित, महावर और अंजन लगाये, भौरों की

गुंजार से मुखरित पंकज का नूपुर पहने प्रतिदिन, साँझ, प्रिय से उसकी निष्ठुरता के कारण रूठी, महादेवी को मनाने आती है। प्रकृति महादेवी जी का शृंगार भी करती है।

> अरुणा ने यह सीमन्त भरी,
> सन्ध्या ने दी पद में लाली;
> मेरे अंगों का आलेपन
> करती राका रच दीवाली।

अन्त में वह भी स्थिति आई जब अज्ञात प्रिय की दोनों प्रियायें (प्रकृति और महादेवी) एक हो उठीं। दोनों का भेद मिट गया। सान्ध्य नभ में महादेवी के रँगीले भाव फैलते हैं और तिमिर की दीपावली (तारे) उन्हीं के पुलक-गीले रोम हैं :—

> 'फैलते हैं सान्ध्य नभ में भाव ही मेरे रँगीले
> तिमिर की दीपावली हैं रोम मेरे पुलक-गीले'

जीवन की अस्थिरता का प्रत्यक्ष दर्शन भी प्रकृति ने कवयित्री को कराया है। जैसे प्राकृतिक सौन्दर्य का क्षण क्षण में सृजन और नाश होता रहता है उसी प्रकार जीवन का क्षण भी बदलता रहता है। प्रकृति के इसी रहस्य को देख कर महादेवी ने कहा :—

> 'भावे क्या अलि ! अस्थिर मधु दिन
> दो दिन का मृदु मधुकर-गुंजन,
> पल भर का यह मधु-मद्य वितरण;'

* * *

बादल का हृदय विश्व के दुःख से दुखी हो, पिघल कर जब पृथ्वी पर (उसे शीतल करने के निमित्त) गिर पड़ता है तब उसे अपरिचित पंक पी कर उसकी निशानी ही मिटा देता है। परदुःख-दुखी बादल का अन्त कितना करुण है? ठीक वही करुण दशा मानव जीवन की है :—

'सजल बादल का हृदय कण,
चू पड़ा जब पिघल भू पर,
पी गया उसको अपरिचित
तृषित दरका पंक का उर,
मिट गई उससे तड़ित सी
हाय वारिद की निशानी।
करुण वह मेरी कहानी!'

अपने सम्पूर्ण मधु और सौरभ को दान देकर भी प्रसन्न रहनेवाला फूल अन्त में धूलि में मिलकर सबकी अवहेला की वस्तु हो उठता है। जब उस सुमन के त्याग एवं मधुरिमा से पूर्ण जीवनकी इस करुण दशा पर संसार को दुख नहीं होता—कुछ भी परवाह नहीं रहती- तो निःसार मनुज की दशा पर कौन रोयेगा :—

विश्व में हे फूल! तू—
सबके हृदय भाता रहा,
दान कर सर्वस्व फिर भी-
हाय हर्षाता रहा;
जब न तेरी ही दशा पर
दुख हुआ संसार को,
कौन रोयेगा सुमन!
हमसे मनुज निःसार को

स्पष्ट है कि संसार ने किसी को सुख नहीं दिया। यहाँ सबको करतार ने स्वार्थपूर्ण ही बनाया है। इसलिये कवयित्री जी फूल से कहती है—

मत व्यथित हो फूल! किसको
सुख दिया संसार ने?
स्वार्थमय सबको बनाया—
है यहाँ करतार ने!

अपने प्रणय-व्यापारों से राग और सुषमा के क्षण क्षण सृजन-विनाश के कारण जीवन की अनस्थिरता का स्मरण दिला कर विराग, की अनुभूतियाँ प्रकृति से महादेवी को प्राप्त हुईं। साथ ही साथ जीवन के भार को हँस हँस कर ढोने और उसके कण कण से अन्य को शीतल करने की साध भी कवयित्री को वहीं से मिली। अपने अंचल में मधु भरे, 'दृगों में अश्रु अधर में हास' लिये, और बिना समझे जग पर लुट जाने वाली कलियाँ; अपने लक्ष्यहीन जीवन में, स्वयं घुल कर औरों की प्यास बुझाने वाले मेघ; पाषाणों की शय्या पर अपने सजल (प्रेम भरे) गानों को गाते हुए नित अपने दुर्गम पथ में अग्रसर निर्झर और 'काटों का हार' पहने कोमल-प्राण कुसुम सभी से महादेवी जी को जीवन में प्रेरणा मिली है जिसके कारण उन्होंने वेदनापूर्ण जीवन को अपना कर हँसना सीखा। महादेवी के प्रतीक, उनके काव्य में प्रयुक्त उपमायें, सभी प्रकृति की सुषमा भरी गोद से प्राप्त हैं। प्रकृति उनकी चिर सहचरी है।

६

कुछ और

संग्रह-काव्यों के सम्बन्ध में

महादेवी की स्फुट रचनाओं के चार संग्रह-काव्य बन पाये हैं—नीहार, रश्मि, नीरजा और सान्ध्यगीत। इन चारो का एक काव्य 'यामा' के नाम से भी प्रकाशित है जिसे चार यामों (पहरों) में बाँटा गया है। ये याम दिन के हैं या रात्रि के यह महादेवी को भी ज्ञात नहीं। 'नीहार' में सन् १९२४ से लेकर १९२८ तक की ४७ रचनायें, 'रश्मि' में १९२८ से १९३१ के बीच के ३५ गीत, 'नीरजा' में ५८ गीत (रचना-काल १९३१ से १९३४ तक) और 'सान्ध्यगीत' में १९३४ से १९३६ तक की ४५ रचनाओं का संग्रह है। १८५ गीतों का यह संग्रह-काव्य 'यामा' कई चित्रों से युक्त हिन्दी में अपने ढंग का एक है। प्रत्येक गीत में एक चित्र अवश्य है (कहीं कहीं दो भी)। इन चित्रों से गीत का भाव भी कुछ कुछ समझा जा सकता है। इन चित्रों के अतिरिक्त कुछ और भी भाव-व्यंजक चित्र हैं जिन्हें महादेवी ने स्वयं बनाया है। यामा के बाद की कुछ रचनाओं का संग्रह-काव्य 'दीपशिखा' के नाम से और भी सजधज के साथ प्रकाशित है; इस पुस्तक में महादेवी की काव्य-कला और चित्र-कला का अनुपम योग हो सका है। सफल कवि और

चित्रकार के योग से यह काव्य हिन्दी में तो अद्वितीय है ही, अन्यों के लिए भी इसमें कम आकर्षण नहीं है।

'नीहार' के युग से लेकर 'दीपशिखा' के युग तक महादेवी की दिशा और उनका पथ एक रहा है। उनके भाव और विचार प्रशस्त से प्रशस्ततर और स्वच्छ से स्वच्छतर होते गये हैं किन्तु आत्मा वही है। 'नीहार' के प्रथम गीत ही में रहस्यवाद पूर्णरूपेण स्पष्ट हो उठता है। महादेवी की कला भी इस गीत में वैसी ही है जैसी वह उसके बाद के गीतों में है।

इन रचना-संग्रहों के नाम भी साभिप्राय हैं। जिस प्रकार नीहार में धुँधलापन होता है उसी प्रकार महादेवी की प्रारम्भिक रचनाओं के भाव और विचार भी अस्पष्ट से हैं; फिर भी उनमें एक प्रकार का सौन्दर्य है जो कुहराच्छन्न आकाश में मिलता है। 'रश्मि' के प्रथम स्पर्श से ही विश्व नवजीवन प्राप्त करता है, कण-कण ज्योतिर्मय बन उठता है। इसीलिए कदाचित, अपनी उन रचनाओं को, जिनमें चिन्तन का प्रकाश और माधुर्य अधिक स्पष्ट हो चला है, महादेवी ने 'रश्मि' में संगृहीत किया है।

इन रचनाओं में दार्शनिकता का स्थान 'नीहार' की अपेक्षा मुख्य है; यद्यपि भाव-माधुर्य अपेक्षाकृत कम न रहा। 'रश्मि' को छूते ही 'नीरजा' का खिल उठना स्वाभाविक है। अतएव चिन्तन द्वारा भावों में जो प्रौढ़ता और स्पष्टता आ चली उनकी अभिव्यक्ति करने वाले गीतों को 'नीरजा' में स्थान मिलना ठीक ही था। इन गीतों में, वही 'नीहार' की सी, भावुकता ही प्रधान है किन्तु पहले की अपेक्षा यह भावुकता अधिक प्रौढ़ है, अनुभूतियों में तीव्रता भी अधिक है। 'संन्ध्या' का दृश्य करुणाजनक होता है; दिन अपनी हार को स्वर्णाक्षरों में उसी समय लिख देता है। वैभव का अन्त और अन्धकार का आरम्भ वहीं से होता है। दिन की विभूतियों पर पानी फिर जाता है। 'नीरजा' का उस समय मुरझा जाना भी आवश्यक है। इसलिए 'सान्ध्यगीत'

में महादेवी के उन गीतों का संग्रह है जिनमें विरहानुभूति और भी गहरी, साधना अधिक सजग और वेदना अधिक तन्मय है। सन्ध्या के बाद रात्रि का घनान्धकार छा जाता है; आकाश में अगणित दीपक तो जल उठते ही हैं, पृथ्वी के प्राणी भी छोटे छोटे दीपक जलाकर रात्रि के अन्त की कामना करते रहते हैं। रात भर जल-जल कर दीपक औरों को प्रकाश देता है और उसे प्रभात की प्रतीक्षा भी बनी रहती है। महादेवी का प्राण विरह में उसी दीपक के समान जल-जल कर, स्वयं को गला कर, मिलन-प्रभात की कल्पना में असीम वेदना को सुलाये अपनी यात्रा में अग्रसर हुआ है। 'सन्ध्या' के समय, (विरह की आदिम वेला) में दीपक का जन्म होता है और उसका अन्त है प्रभात (मिलन)। अतः अपनी पुंजीभूत वेदना को महादेवी ने जिन गीतों में व्यक्त किया है उनके संग्रह की संज्ञा *दीपशिखा* है। उन्हें विश्वास है कि दीपशिखा का अन्त 'प्रभात' में ही होगा।—

* * *

पलायन-वाद

कुछ लोग महादेवी को पलायनवादी कहते हैं, अतः इस विषय पर थोड़ा विचार कर लेना अनावश्यक न होगा। मानव के मस्तिष्क में ही 'पलायन-वृत्ति' है। हम, किसी भी काम को कुछ देर कर लेने के बाद, उससे ऊब जाते हैं। मिठाइयाँ खाते खाते नमकीन की ओर मन खिंच पड़ता है। खेलों में अधिक आनन्द लेने वाला खिलाड़ी भी निरन्तर घण्टों खेलते खेलते ऊब जाता है। मन की यह वृत्ति राजा-रंक, दुःखी-सुखी सबमें एक सी है। किन्तु 'पलायनवाद' में प्रयुक्त 'पलायन' शब्द अपने इसी अर्थ में व्यवहृत नहीं है। साहित्य में उसका अर्थ है जीवन-संग्राम से दुर्बलता के कारण भाग जाना।

छायावादी तथा रहस्यवादी कवि स्थूल जग से दूर सूक्ष्म लोक की बातें करते हैं; अतएव उनके उद्गारों में पार्थिव कोलाहल, असन्तोष

और क्रान्ति की चिनगारियाँ नहीं हैं। रहस्यवादी अपने अज्ञात नाविक से प्रार्थना करता है :—

> ले चल वहाँ भुलावा देकर
> मेरे नाविक ! धीरे धीरे,
> जिस निर्जन में सागर लहरी
> अम्बर के कानों में गहरी
> निश्चल प्रेम-कथा कहती हो
> तज कोलाहल की अवनी रे।'

किन्तु आज का युग, भौतिकता में बेसुध होने के कारण, पृथ्वी और पार्थिवता के अतिरिक्त आनन्द और सत्य को कहीं मानने को तैयार नहीं। इसीलिए कुछ लोगों ने इन कवियों पर यह आरोप लगाया कि जीवन और जग की प्रत्यक्ष स्थिति से आँखें बन्द कर इन्होंने एक कठोर सत्य की उपेक्षा तो की ही, जग की भीषणता के सम्मुख पलायन भी किया। इन आरोपों के साथ ही, कई साहस-सम्पन्न साहित्यकारों की टोली 'प्रगतिवाद' के नाम से सम्मुख आई। समाज के वैषम्य, उसके कारण तथा उसे दूर करने की युक्तियों के साथ इस टोली के हृदय में एक क्रान्ति छिप रही।

खैर, संक्षेप में, देखना यह है कि इन आरोपों में सत्य कितना है। पहली बात, साहित्य हमारी पार्थिव भूख की ही तृप्ति नहीं करता; स्थूल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये तो विश्व ने बहुत से साधन प्रस्तुत कर रखे हैं, राजनीति उनमें से एक है। हाँ, साहित्य द्वारा इन सभी साधनों को प्रेरणा मिल सकती है। अतएव साहित्य में केवल पार्थिव तड़पन भरने वाले या तो अन्य भौतिक साधनों, की अवहेलना करते हैं या साहित्य को भी भौतिकता में बाँधने पर तुले हैं। मैं मानता हूँ कि 'वैषम्य-पराकाष्ठा के कारण जब समाज में बहुत सी बुराइयाँ भर

जाती हैं और उन्हें दूर करके सुव्यवस्था स्थापित करने में राजनीति सफल नहीं हो पाती तो साहित्य इस कार्य के लिये अवश्य आगे आता है। परन्तु साहित्य इसी कार्य में अपने को बाँध नहीं सकता।

'यथार्थ का सामना न कर सकने वाली दुर्बलता ही छायावाद और रहस्यवाद को जन्म देती है यह बात स्वयं असत्य है इसके लिये उस युग की ओर ध्यान देना होगा जबकि देश धन-धान्य से पूर्ण था, जीवन में सन्तोष और सुख था, फिर भी उन भौतिक सुखों को भूल कर मानव ने उपनिषदों में ज्ञान का सूक्ष्म विस्तार किया। और हम यह भी देखते हैं कि 'मचान पर बैठा कृषक जब अचानक खेत और चिड़ियों को भूल कर विरहा या चैती गा उठता है तब उसमें खेत खलिहान की कथा न कह कर अपनी किसी मिलन विरह की स्मृति ही दोहराता है। चक्की के कठिन पाषाण को अपनी साँसों से कोमल बनाने का निष्फल प्रयत्न करती हुई दरिद्र स्त्री, जब इस प्रयास को रागमय करती है, तो उसमें चक्की और अन्न की बात न होकर किसी आलम्बन में पड़े झूले की मार्मिक कहानी रहती है।' फिर, महादेवी के बारे में यह पलायन की बात कैसी ?

दूसरी बात, विश्व बदलेगा और उसी के साथ उसकी समस्यायें भी दिन प्रतिदिन बदलती रहेंगी। आज की पार्थिव हलचल कुछ दिनों बाद समाप्त हो जायगी किन्तु जीवन न बदलेगा। रोटी का मसला हल कर लेने के बाद भी, मानव के हृदय में प्रणय के मधुर भाव, जन्म-मरण के प्रश्न और रोने-हँसने के व्यापार तो बने ही रहेंगे। अतः स्थूल विश्व की प्रत्यक्ष समस्याओं की अभिव्यक्ति करने वाला साहित्य चिर-स्थायी नहीं हो सकता जबकि हृदय का गीत हमारे लिये चिरकाल तक आनन्द का कारण होगा। हृदय के शाश्वत गीत को हम छोड़

नहीं सकते। महादेवी को जो लोग पलायनवादी कहते हैं वे यह भूल जाते हैं कि इस प्रकार तो वे भी पलायनवादी ही ठहरते हैं। सूक्ष्म और स्थूल के संघात-विशेष की संज्ञा मानव है। यदि महादेवी का पलायन सूक्ष्म की ओर है तो उनका पलायन स्थूल की ओर। स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने में उतनी हानि नहीं है जितनी स्थूलता की ओर जाने में।

'आधुनिक कवि १' (महादेवी)

— के —

गीतों का अध्ययन ।'

(एकसौ इकतालीस)

[१]

प्रस्तुत गीत भाव-प्रधान गीत है और इसीलिए इसमें रमणीय कल्पना की निराली छटा है। प्राकृतिक सुषमा-दर्शन तथा प्रकृति की विभूतियों में मधुर व्यापारों की मोहक कल्पना से महादेवी को 'अज्ञात' सौन्दर्यवान के प्रति प्रणय की जो प्रथम अनुभूति हुई उसी की ओर इस गीत में संकेत है। महादेवी ने व्यक्त में अव्यक्त, स्थूल में सूक्ष्म और ससीम में असीम का दर्शन किया है। गीत के अन्त में, रहस्यवाद की मिलनोत्सुकता स्पष्ट है।

जब चन्द्रमा ने निशा के केश (अन्धकार) को चाँदनी में धो दिया था (चाँदनी रात से अभिप्राय है); वसन्त कलियों में उन्माद छलका रहा था और (प्रेम-दीवाना) पवन तुहिन-कणों के हार (ओस-कणों) को धूल में फेंक रहा था; तभी महादेवी को प्रणय की प्रथमानुभूति हुई। जीवन में प्रेम-संगीत सिखाने वह प्रिय, पहली बार, इस पार आया। उसकी इस कृपा दृष्टि से इनके मानस में असंख्य सपने जग उठे और उसकी स्मित ने इनके हृदय में मीठी पीड़ा भर दी। संगीत के प्राथमिक अभ्यास में, गायक, जिस प्रकार, भूलें करता है, उसके हाथ वीणा पर फिसलते रहते हैं; उसी प्रकार प्रणय सम्बन्धी भूलें महादेवी से भी होती रहीं; किन्तु वह प्रिय इन भूलों पर प्यार ही करता रहा। प्रथम मिलन से कई युग बीत गये, कई दीपक (जन्म) बुझ चुके (महादेवी का विरह कई युगों का, कई जन्मों का, विरह है), किन्तु अपनी विश्व वीणा पर वह प्रिय जैसा मोहक संगीत गाता है वैसा संगीत उसकी प्रेयसी अब तक न गा सकी। अतः वह प्रार्थना करती है कि हे देव, अब यह जीवन का (विरह) गीत गाया नहीं जा रहा है; मेरे हृदय की अस्पष्ट झंकार को अपनी विश्व-वीणा के स्वर में मिला लीजिए।

[२]

रजत करों (चन्द्रकिरणों) की तूलिका से कोमल तुहिन बिन्दुओं (ओस कणों) को लेकर, जब, संसार कलियों पर अपनी करुण कथा

लिख रहा था (चाँदनी रात में कलियों पर ओस गिर रही थी); अपने बिरही हृदय के उच्छ्वासें, जब, मेघ (वर्षा के रूप में) लुटा रहे थे, दिन की चोटों पर अंजन लगाने के लिए (दिन के थके प्राणों को विश्राम देने के लिए) जब अन्धकार आ जाता; जब मधु की बूँदों (मकरन्द) पर तारक लोकों के शुचि फूलों (ओस-कणों या किरणों) को महादेवी ने देखा; तब इनका शान्त हृदय, प्रिय के अभाव की अनुभूति से, विधुर हृदय के समान ही, सिहर उठा। मौन प्रणय, मधुर व्यथा, (प्रेम-पीड़ा) और स्वप्नों की भाँति चुपचाप आकर, उस प्रिय ने इनके हृदय में प्रेम की वंशी बजा दी। उन प्राकृतिक दृश्यों में झाँक कर प्रिय के नेत्र-दूतों ने क्षण में रहस्य की सारी बातें इन्हें बता दीं जिसके कारण इनकी निर्निमेष पलकों में विरह की हलचल मच गई। तभी से इनका जीवन एक उन्माद है और प्राणों की चोटें निधियाँ हैं। इनका मन निरन्तर वेदना माँग रहा है (प्रेम में 'प्रिय से कम मादक पीर नहीं')। प्रथम मिलन के उस दिन से, इनके सूक्ष्म अन्तर्लोक में, पीड़ा का एक साम्राज्य बन गया, जहाँ 'मिटना' ही 'निर्वाण' था और नीरव रोदन था प्राणों का पहरेदार (विरह में मिट जाना ही महादेवी का निर्वाण है और इसके लिये मुखर हाहाकार नहीं वरन् मौन क्रन्दन वांछनीय है)। उस मौन मिलन की बात को स्वप्न कैसे कहा जा सकता है जब कि आज भी प्रत्यक्ष मिलन होता रहता है; प्रतिदिन, फूलों में छिपकर वह प्रिय हँस देता है और महादेवी के, प्रिय-दर्शन-जनित आनन्दातिरेक से प्रेमाश्रु, एवं उसे पकड़ न पाने की विवशता से वेदनाश्रु, ओस के रूप में, उन फूलों पर गिर पड़ते हैं।

[३]

इस गीत में प्राकृतिक व्यापारों के माध्यम से विश्व के कुछ रहस्यों की ओर मार्मिक संकेत है। कल्पना, क्लिष्ट होकर भी, रमणीय है।

जब निश्वासों का नीड़ (आकाश) रात्रि का शयनागार बन जाता है अर्थात् जब सबेरा होने लगता है (कवयित्री की कल्पना है

कि रात्र्यंत में निशा कहीं आकाश में सोने चली जाती है); मुक्तावलियों (तारों) के सुन्दर बन्दनवार लुट जाते हैं उस समय उन बुझते तारों के मौन नेत्रों से आँसू (ओस-कण) गिरकर मानो संसार की अनस्थिरता की ओर संकेत कर जाते हैं। श्री नन्ददुलारे वाजपेयी जी ने इन पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार लिखा है :—'आकाश में अचानक बादल छा गये हैं और पानी बरसने लगा है। इसी अवस्था की कल्पना यह जान पड़ती है। अथवा यह रात्र्यंत की कल्पना है। रात्रि के, मुक्तावलियों के अभिराम बन्दनवार (तारकापंक्ति) छिन्न हो कर लुट गये हैं। निश्वासों का नीड़ उसका शयनागार बन गया है। (इसका इतना ही अर्थ मेरी समझ में आ पाता है कि रात्रि दुःखपूर्ण निश्वास ले रही है)......।' [कल्पना की क्लिष्टता के कारण ही मैंने वाजपेयी जी का मत प्रस्तुत कर दिया है। आरम्भ में मैंने अपने विचार से अर्थ दे रखा है।]

'अपने सुनहले अंचल में (उषाकाल में) रोली बिखरा कर (बालारुण की अरुणिमा फैला कर) जब प्रात हँस देता है और जब बिछलती लहरों पर भोली किरणें (प्रेमवश) मचल पड़ती हैं; तब कोमल पल्लव के घूँघट को हटा कर (खिलकर), अपने उन्माद के द्वारा, कलियाँ संसार की मादकता को व्यक्त कर देती हैं। पवन को अपना सौरभ देकर मुरझाये फूल, जब उसी से मानो, पूछते हैं कि हम तो तुम्हारे पथ में बिछे हैं किन्तु तुम हमारी आँखों में धूल क्यों डालते हो (हमें छलते क्यों हो, हमारी अवहेला क्यों करते हो ?); और जब भौरे उन मुरझाये फूलों को ठुकरा कर चल देते हैं; तब मानो मर्मर के रोदन में संसार की निष्ठुरता व्यक्त होती रहती है। सन्ध्या के समय दिन अपनी असफलता को स्वर्णाक्षरों में लिख देता है (यह कवयित्री की कल्पना है); फिर भी गोधूली आकाश में अगणित दीपकों (तारों) को जलाकर अपनी विभूति की रक्षा करना चाहती है; किन्तु अन्धकार का समुद्र बढ़ आता

है और गोधूली का प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। मानो अन्धकार कहता है कि अपने ऐश्वर्य को लिए कितने युग बीत गए फिर भी संसार उसी ऐश्वर्य के पीछे मतवाला है। स्वप्नलोक के फूलों से, (उन इच्छाओं से जिनकी पूर्ति स्वप्न में ही सम्भव है) जब हम अपने जीवन का निर्माण करते हैं (अनोखे जीवन की कल्पना करते हैं) और सोचते हैं कि यह हमारा काल्पनिक जीवन अमर रहेगा, उस समय अन्तर्लोक में कोई गा उठता है कि यह संसार कितना पागल है [मानव-हृदय विचित्र इच्छाओं, कल्पनाओं, का क्रीड़ा-क्षेत्र है; उन इच्छाओं की पूर्ति प्रत्यक्ष विश्व में देखना पागलपन ही है)।

[४]

यह गीत भी भाव प्रधान है। इसमें प्रणयानुभूति की प्रथम जागृति की ओर संकेत है।

रजनी झिलमिल तारों की जाली ओढ़े जा रही थी (रात्र्यंत की कल्पना) उसके बिखरे वैभव पर उजियाली, मानो 'ओस' के रूप में रो रही थी; चन्द्रमा को पकड़ने के लिए लालायित सरिता अपनी लहरों का ही चुम्बन करती हुई अन्धकार की छायामात्र का आलिंगन कर रही थी (लहरों वाली सरिता में पड़े चन्द्रबिम्ब के बारे में कवयित्री की यह कल्पना है); जब मलयानिल, नमी में, मानो अपनी करुण (विरह) कथा कह जाता जिसे सुनकर पृथ्वी भी आँसुओं से (ओस से) गीली पड़ जाती; पल्लवों के हिंडोले में सौरभ सो रहा था और रश्मियाँ छिप छिप कर मधु से सींची गलियों में (वाटिका में) आ रही थीं; जब आँखों में रात बिता कर (रात भर जगकर) चन्द्रमा ने अपना (जागरण से) पीला मुख फेर लिया; तब प्रात रूपी चित्रकार पुनः प्राची में रंगीन चित्र बनाने आया। उस समय कण कण में नव यौवन भरा था; (मानो प्रकृति अपने प्रिय को उपहार देने के लिये इन विभूतियों को लेकर जा रही थी)। ऐसे समय महादेवी ने, अपने पास, उपहार के निमित्त, कुछ

न देख कर, सपनों की डाली (भेंट) प्रस्तुत की (उस दृश्य से इनके मानस में सपने जग उठे)। हीरक जाल से भी बढ़कर जिसकी नख-ज्योति है, उस प्रिय के चरणों पर इन्होंने कुछ आँसू गिराये। उस प्रथम मिलन के अवसर, इनकी ललचाई पलकों पर लज्जा थी। (प्रिय का प्रथम साक्षात्कार लज्जा का कारण होता ही है); उस सौन्दर्यवान के दर्शन ने इन्हें पीड़ा का साम्राज्य दे डाला। उस सुनहले स्वप्न को (प्रथम-दर्शन को) देखे कई युग बीत गये और विरह में रोते रोते इनके नेत्रों के कोष मोती (आँसू) गिरा गिरा कर खाली हो चले। तभी से महादेवी अपने सूनेपन की दीवानी रानी हैं जो अपने प्राणों का दीपक जलाकर दीवाली रचा करती हैं (उस पीड़ा के साम्राज्य को प्रकाशित करती हैं); अपनी आहों को इन्होंने ओठों में बन्द रखा है क्योंकि प्रेम की पीर में ही प्रेमी का सर्वस्व रहता है। अन्त में, मधुर उपालम्भ के रूप में वे अपने निष्ठुर से कहती हैं कि यदि मेरा प्राण-दीपक इस विरह में बुझ गया तो मुझे कुछ चिन्ता नहीं, उलटे तुम्हारा पीड़ा का राज्य ही अन्धकारमय हो जायगा। (जब मैं न रहूँगी तो तुम्हारे प्रेम की पीड़ा भी किसी के हृदय में न रहेगी)।

[५]

विषाद की एक ही धारा बाह्य विश्व और महादेवी के अन्तर्लोक में प्रवाहित है। जो सूनापन महादेवी के मानस में है वही संसार के कण कण में व्याप्त है।

संध्या की आँखों का राग (अरुणिमा) काले अंजन में (अन्धकार में) मिल जाता है अर्थात् रात्रि हो जाती है, उस समय अपने तारे फैलाकर, मानो, आकाश किसी खोई हुई वस्तु की चाह लिये मौन वेदना के साथ, सन्नाटे में (कदाचित अपने प्राणों के दागों को) गिनता है। उस आकाश में महादेवी का सूनापन ही व्याप्त है। वेदनाओं का प्याला पीकर झूमते हुये मतवाले मेघ, रुँधी निश्वासों के साथ, रह रह कर (वर्षा के-

रूप में) रोते हैं और बिजली से मिल-मिलकर बिछुड़ जाते हैं; तो महादेवी का विषाद ही वहाँ दिखाई देता है। अपनी ठंढी साँसों में (मलयानिल में) आँसू (ओस) भरकर, रात्रि सन्नाटे में पृथ्वी पर उन्हें गिरा जाती है (अर्थात् प्रातःकाल ओस बिखर जाती हैं) और उन ढरकते हुये ओस कणों को चूमने के लिए प्यासी किरणें आती हैं। ये किरणें उन्हें जैसे ही चूमती हैं त्योंही वे ओस कण ढुलक पड़ते हैं और एक विषाद का दर्शन हो उठता है। यही विषाद महादेवी के मानस में भी है। किसी बीते युग की याद देकर, जब मन्द पवन मुरझाए फूलों को खिला देता है; एक क्षण के लिये वे कुम्हलाए फूल हँस देते हैं और फिर झर पड़ते हैं; इस दृश्य में छिपा विषाद कवयित्री के मानस में छिपा हुआ विषाद ही है। मौन आँखों की भिक्षा में, आँसू के मिटते दागों में सस्मित ओठों के भीतर छिपी पीड़ा में, और वेदना के उच्छ्वासों में कवयित्री का विषाद ही भरा है। विश्व के कण-कण में वही सूनापन है।

[६]

इस गीत में महादेवी जी कहती हैं कि मैं अनन्त पथ में (आकाश में, अनन्त प्रियतम के प्रेम में) जिन सुख-सपनों की बातें लिख रही हूँ उसे रात्रि (विरह की घड़ियाँ) अपने आँसुओं से मिटा न सकेंगी अर्थात् विरह-वेदना के कारण हँसते सपने समाप्त नहीं होंगे। अथवा महादेवी जी 'अज्ञात' के प्रति अपने प्रणय की जो बातें कहती हैं वे अमिट हैं; समय उन्हें मिटा न पायेगा। इनकी पीड़ा इतनी व्यापक है कि पृथ्वी की जो धूलें उड़कर आकाश में बादलों से मिलती हैं उनमें भी इनकी पीड़ा रहेगी; या, विश्व की पार्थिवता इनके हृदय के भावों का स्पर्श कर इनकी दिव्य प्रणय-पीड़ा को दबा न सकेगी। महादेवी का कहना है कि एक ऐसी स्थिति आयेगी जब इनका प्राण विश्वमय बन उठेगा; तारों में अनन्त आँखें झलकेंगी और अभिलाषायें असीम होकर आकाश भर में फैल जायँगी। वीणा (देह) मूक होगी, बजानेवाला (आत्मा) अन्तर्हित

होगा इस विस्मृति की अवस्था (आत्मा की अन्तर्हित स्थिति जिसमें उसे ब्रह्म का साक्षात्कार प्राप्त होता है) को सैकड़ों निर्वाण नहीं पा सकते (महादेवी को वह विस्मृति की अवस्था निर्वाण से भी बढ़ कर है)। क्योंकि जब असीम (ब्रह्म) से ससीम (आत्मा) का, विस्मृति में, मेल हो जायेगा, तब अमर आत्मा अपने को मिटा कर मिटने का खेल खेलेगा; अपने भिन्न अस्तित्व को मिटा कर वह कण कण में व्याप्त हो जायेगा।

[७]

महादेवी ने वक्रोक्ति के बल, मृदु उपालम्भ, वेदनाप्रियता, अपने आँसुओं का महत्व, हृदय का सूनापन और असीम पीड़ा ढोने वाले अपने प्राण की महत्ता आदि की अनूठी अभिव्यंजना प्रस्तुत की है।

वे अपने प्रिय से कहती हैं कि हे करुणामय, आँखमिचौनी खेलनेवाली छाया (दिन में बादलों के इधर उधर घूमने से छाया के होने और फिर छिप जाने से महादेवी का अभिप्राय है); मतवाले मेघ, रजनी के श्याम कपोलों पर ढुलकते श्रम-कण (रात्रि के अन्धकार में गिरते ओस बिन्दुओं की यह रमणीय कल्पना है), मीठे सौरभ-सने फूल, नभ के तारे, संध्या के पीले मुख पर किरणों की फुलझड़ियाँ (सन्ध्या की कल्पना), मादक रस से भरा हुआ विधु का चाँदी-पात्र, जिसमें मिश्री की भाँति चाँदनी घुल जाती है; आदि अपने लुभानेवाले धन लेकर, जब, आप आयेंगे और उन्हें देख कर किसी का हृदय न मचलेगा (किसी का हृदय उनका ग्राहक न होगा क्योंकि प्रेमिका महादेवी तो विरह में मिट जायेंगी), और आप निराश भिक्षुक की भाँति फिर जायेंगे तब समझेंगे कि आपके सौंदर्य पर मरने वाला मेरा प्राण कितना मूल्यवान है। आपका रत्नजटित सिंहासन मुझे नहीं चाहिए, सिकता (पीड़ा) वाला मेरा मरु-मानस ही अच्छा है। आपके आकाश के तारे बुझ बुझ जाते हैं; उनका प्रकाश लुट जाता है किन्तु मेरा प्राण-दीपक निरन्तर जलता ही है। जिस दुःख में

संसार बेसुध होकर बच्चों की भाँति निरुपाय है, वह मेरी आँखों में आँसू बन कर स्वयं नष्ट होता रहता है (महादेवी ने दुख को सुख मान लिया है)। संसार हँस कर कह देता है कि मैं किसी भौतिक अभाव में रोती हूँ, मैं निर्धन हूँ; किन्तु आज तक कोई उन कीमती आँसुओं को गिन न सका। यदि मुझे लघु समझ कर, उस प्रिय को मुझसे मिलने में लज्जा लगती है तो उन्हें सोचना चाहिए कि क्या वे मेरी पीड़ा का भार सह सकेंगे; उनसे मैं छोटी कैसे हूँ? यदि उस प्रिय में अनन्त करुणा है तो मुझमें असीम सूनापन है।

[८]

प्रिय-मिलन के लिये घर छोड़कर बहुत दूर चली जाने वाली प्रेमिका के पथ में आये हुए भिन्न भिन्न अन्तरायों और प्रेमिका की दयनीय स्थिति का वर्णन तथा प्रिय के देश का चित्र प्रस्तुत करके अन्त में महादेवी ने 'विसर्जन ही है कर्णाधार' के सिद्धान्त की अभिव्यंजना प्रस्तुत की है। इस गीत में प्रयुक्त प्रतीक भी सामान्य हैं और इसीलिये इसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं ज्ञात होती।

[९]

आकाश, व्यथा के कारण थकी, पलकों में सपने बन्द किए सो रहा हो (आकाश में बादल घिर आने की कल्पना); बादलों के हृदय से अवसाद चुपचाप (वर्षा के रूप में) छलकता हो; वेदना की वीणा पर शून्य मौन राग गाता हो (अर्थात् नभ-मण्डल में वेदना का भाव ही व्याप्त हो); और अपने विरही जीवन के उच्छ्वासों के साथ जब रात्रि तारक-फूलों को, मानो, निष्ठुर प्रिय की भेंट के लिये, गूँथती हो (बादल के बरस चुकने पर तारों के फिर से धीरे धीरे दिखाई देने की कल्पना)। उन्हीं तारक-फूलों में अपने हठीले प्राण को गूँथ देने की प्रार्थना कवयित्री अपने प्रियतम से करती हैं। जब किसी मधु-दिन की याद में प्रात मतवाला हो उठता है, कली अपनी अलसाई (मस्त) आँखें खोलकर

(खिल कर) मानो सपने की बातें कहती है, मन्द मलयानिल अपने बीते हुये उन्माद-भरे क्षण की स्मृति में उच्छ्वासें छोड़ता है, और मौन फूल मानो किसी के आँसू माँगते हैं (फूलों पर पड़ी ओस की कल्पना)। उन फूलों को अपने कोमल प्रेमाश्रु पिला देने की प्रार्थना महादेवी जी उसी प्रिय से करती हैं। मचलते उद्गारों के समान, दिन में, किरणों के जाल जब उलझ पड़ते हों; मानो किसी की ठंढी साँस (करुण साँस) छूकर लहरें सिहर जाती हों, संसार, चकित सा, अपने प्राणों का दाग गिन रहा हो (अपूर्ण अभिलाषाओं की पूर्ति में बेसुध हो); और दिन-मान (सवेरे से सायंकाल तक का समय) अपनी सुनहली प्याली में (किरणों में) किसी का (विशेष रूप से कमल का) प्रेम-रस पान करता हो; उस दिनमान को, अपने चिर संचित प्रेम को चुपचाप पिला देने की साध महादेवी को है। महानिद्रा (प्रलय) में जब समुद्र स्वप्नों की हाला पीकर मतवाला हो उठता है; उसकी धड़कन में तूफान भी अपनी झंकार मिलाता है; प्रलय-वर्षा के झकोरों से मानो प्रलय के मेघों की छाया कोई सन्देश देती हो; और उस समय के भीषण हाहाकार के मिस मानो कोई अपनी विषादपूर्ण आहों में पूछता हो कि कौन आ रहा है; उस पारावार में, प्रलय में, अपने जीवन-फूल को चुपचाप बहा देने की प्रार्थना महादेवी प्रिय से कर रही हैं।

[१०]

मस्तिष्क और हृदय की हलचल के सो जाने पर ही वह अज्ञात इस पार आता है; जैसे अन्धकार के पर्दे में छिपा प्रभात आता है उसी प्रकार महादेवी का मत है कि उनका प्रिय नीरव गति से तम में छिपा आता है। रहस्यवाद की विस्मृति के लिये मस्तिष्क और हृदय को पूर्णतः निष्क्रिय होना पड़ता है तभी वह छलनामय रहस्यनिधान इस पार आता है। यही भाव इस गीत का प्राण है।

दुर्बल प्राणों की उस कम्पन को, जिससे यह ज्ञात होता रहता था कि महादेवी का हृदय प्रिय का मौन आवाहन कर रहा है, इन्होंने अब शान्त कर रखा है; (मिलने के लिये आकुल तथा विरह में अलसाई) भारी पलकों द्वारा अपनी चंचल पुतलियों को इन्होंने बन्द कर लिया है; आँधी बरसाने वाली (वेदनाश्रु बरसाने वाली) आँखें अब शान्त हैं। दीपक के समान महादेवी का निष्फल प्राण, प्रिय की प्रतीक्षा में, जल जल कर और अपनी अभिलाषाओं को लुटा कर (खोकर), अन्त में निर्वाण हो हो चला है अर्थात् अभिलाषाओं से मुक्त हो गया है। निर्घोष (शान्त) घटाओं में, जिस प्रकार, बिजली छिपी रहती है उसी भाँति इनके मौन हृदय में वेदना छिपी है। झंझा के उन्मादों में (विरह की हलचल में) बेहोशी घुल रही है अर्थात् इनके हृदय की सारी तड़पन, हलचल अब सो रही है। इनका मत है कि इनका प्रिय (प्रभात की भाँति) तम के परदे में (पूर्ण शान्ति में) आता है; अतएव ये नभ के तारों से (अपने-हृदय के मधुर भावों से) क्षण भर के लिए बुझ जाने की मार्मिक प्रार्थना करती हैं।

[११]

इस गीत की प्रथम १२ पंक्तियों में महादेवी ने बचपन का चित्र अनूठी कल्पनाओं द्वारा आँका है। उसे स्वर्ग का नीरव उच्छ्वास, देव वीणा का टूटा तार, क्षीरनिधि की सुप्त तरंग और सरलता का न्यारा निर्झर कह कर इन्होंने उसकी दिव्यता, शांति और सरलता की ओर संकेत किया है। जीवन का यह समय मृत्यु का क्षणिक उपहार है (क्योंकि मृत्यु के बाद ही कुछ क्षण के लिये, नवीन जन्म में यह स्थिति प्राप्त होती है); उसमें नई नई आशायें रहती हैं; उसमें सुनहले स्वप्न सजग रहते हैं; वह प्रेम की चमकीली आकार (खानि) है; निर्मेघ गगन की भाँति वह स्वच्छ है।

शेष पंक्तियों में युवावस्था और उसके बाद की स्थिति का वर्णन है। मायावी संसार आशा और निराशा में, फिर, इस जीवन को नचाता है। संसार में सब दिन एक से नहीं होते; वसन्त का वैभव नष्ट हो जाता है; यहाँ किसी की सुषमा स्थिर नहीं है। जीवन स्वतः क्षणभंगुर है। अन्त में महादेवी ने, यह कह कर कि काँटों में ही सुन्दर (फूलों सा) रंग मिलता है, मनुष्य को, फूल की भाँति खिल कर, अपने को मिटा कर, अन्यों को सुरभित करने की ओर संकेत किया है। (गीत की सरलता के कारण उसकी पूर्ण व्याख्या देना आवश्यक नहीं है)।

[१२]

प्रणय की प्रथम अनुभूति, प्रिय की लुकाछिपी, प्रतीक्षा और उसमें सजग आँखों, तथा मिलनोत्सुकता की ओर इस गीत का संकेत है।

जिस दिन मौन तारों से किरणों की अलकों (बालों, घूँघट) ने कहा कि तुम्हारी कोमल पलकें (रात भर जगने से) अलसाई हैं; अब तुम सो जाओ (तारों के प्रभात काल में छिप जाने और उसके साथ ही रश्मियों के फूट निकलने की यह कल्पना है); जब फूलों पर, मधु की पहली बूँदें (मकरन्द) बिखरी थीं; जब सूर्य ने कमल की मनुहार (विनय) भरी आँखों को देखा (उसपर प्रसन्न होकर दर्शन दिया); जब रात भर जल जल कर पतंग दीपकमय हो उठा; जब बालक की भाँति बादल ने (वर्षा के रूप में) रो दिया; और जब उजियारी अवगुण्ठन में (चाँदनी में लिपटी) रजनी को चन्द्रमा ने (प्रेम-पूर्वक) देखा; तभी से प्रणय-मुग्धा महादेवी भी अपने प्रिय को ढूँढ़ रही हैं अर्थात् इन्हीं दृश्यों को देख कर इनमें प्रणय की प्रथम जाग्रति हुई। तब से प्रति दिन महादेवी फूलों पर (ओस के रूप में) रो देती हैं और वह प्रिय बालारुण में मुस्करा देता है। वह प्रिय कहता है कि वे उसे अपनी पुतली में देखें किन्तु कठिनाई यह है कि ये अपनी पुतली कैसे देखें ? (विरह में ये रात भर

जगती हैं) इनके अपलक नेत्रों पर रात्रि अपने मोती (ओस) गिराकर (इनकी दशा पर मानो रोकर) बराबर पूछती है कि तुम निरन्तर किसको देख रही हो ? इनकी आँखों पर अंजन (अन्धकार) से बुनी चादर फैल जाती है; प्रभात उन पर सोने का पानी (अरुणिमा) डाल दिया करता है; और सौरभ-सनी दीवानी हवा भी इनका स्पर्श कर जाती है (इन सबका आशय यह है कि महादेवी की आँखों के सम्मुख रात का अन्धकार, प्रभात का वैभव और सुरभित पवन आते जाते रहते हैं किन्तु वे उदासी और रोती ही रहती हैं)। इनकी आँखे स्वप्नलोक की रानी बनकर पानी में बैठी हैं अर्थात् इनमें सपने और आँसू ही भरे हैं। जीवन में, प्रथम मिलन के बाद से, कितनी बार पतझर और बसन्त आये और गये, पर इनकी मधुर पीड़ा गई नहीं। किन्तु इनकी आँखें प्रतीक्षा में थक कर, झिप झिप कर कहने लग गई हैं कि हम उस प्रिय से अब लुकाछिपी नहीं खेलेंगी—अब हमें मिलन चाहिये। अपने (विरह के कारण) जीर्ण अंचल में (थके जीवन में) सपने भरे हुये, महादेवी के प्राणों पर अब विस्मृति छा गई है। इसीलिये कवयित्री जाग्रति से प्रार्थना करती हैं कि यदि वह प्रिय सपनों में आये तो तुम चिरनिद्रा (मृत्यु) बन जाना। (इस प्रार्थना में महादेवी की मिलन-आकुलता स्पष्ट है)।

[१२]

फूल से महादेवी जी पूछती हैं कि माधुर्य और मधु के अवतार, सुधा और सुषमा से सुन्दर, डर के आँसू भरे हुए, तारों से मौन, फूल ! तुम यह मुस्काने का स्वभाव सीखकर इधर कहाँ आ गए ? स्निग्ध रजनी (चाँदनी) सा हँसता हुआ, सर्वांग सुन्दर, नवीन पल्लवों के घूँघट में अछूते मकरन्द वाला, स्वर्ग के मोहक सन्देश (स्वर्गीय गुणों वाला), तू, इस देश को (क्रूर संसार) को कैसे ढूँढ़ पाया ? चाँदनी में

(रजत किरणों से) अपने नेत्र धोकर, अनोखा सौरभ और मधु का कोष लिये तुम अकेले इस ओर क्यों आये; क्या रास्ता भूल कर आ गये ? ऊषा के लाल कपोलों (गालों) को देख कर तुम्हें उन्माद हो आता है; और बुझते तारों को देख कर न जाने क्यों तुम रो पड़ते हो (प्रभात में फूलों के खिलने और उन पर पड़ी ओस विन्दुओं की यह कल्पना है)। अपने सौरभ की बाजार लगाकर तुम किस निष्ठुर ग्राहक की प्रतीक्षा कर रहे हो ? चाँदनी सदृश श्रृंगार वाले तुम्हारे अधखुले (मदिर) नेत्र किस बीते मिलन-क्षण, जब तुमने अपना यौवन किसी को लुटा दिया था, की सुधि में हैं ? जानते हो कि यह तुम्हारा प्रेम एक दिन तुम्हारा बन्दीगृह होगा ? किस का प्रेम तुम्हें यहाँ लाया ? तुम्हें जिसने यहाँ भेजा वह निष्ठुर कौन है ? (और जब यहाँ आ ही गये तो) भोले कुसुम ! काँटों के हार हँस हँस पहनो। (महादेवी का प्राण भी उसी कुसुम की भाँति है)।

[१४]

महादेवी जी कहती हैं कि हे प्रिय, तुम्हारे अमर लोक के चिर-मुस्कानों वाले फूल कभी मुरझाते नहीं, तारे बुझते नहीं, नीले बादल कभी घुलते नहीं, बसन्त की श्री भी स्थिर है, अमरों के नेत्र कभी रोते नहीं और न उनके प्राणों में पीड़ा ही है। उस लोक में वेदना-विषाद कुछ नहीं है। न तो वह जलना जानता और न उसे मिटने का स्वाद ही मिला। क्या आप मेरे ऊपर करुणा करके वही लोक मुझे देंगे ? मुझे ऐसा लोक नहीं चाहिए, मुझे अपना मिटने का अधिकार ही अच्छा लगता है। (इस गीत में वक्रोक्ति द्वारा वेदना-प्रियता की अनूठी अभिव्यंजना है)।

[१५]

प्रस्तुत गीत प्रभात का एक रमणीय चित्र प्रस्तुत करते हुए अन्त में

प्रिय-सुधि से उसकी समानता बताता है। सुधि और बिहान के अनोखे चित्र एक साथ इस गीत में अंकित हैं।

प्रभात की किरणों के फूटते ही कण-कण में सरस गीतों वाला प्रेम का झरना बह चलता है (उषा की अरुण चितवन से विश्व की सारी निस्तब्धता एक अपूर्व संगीत में परिवर्तित हो जाती है)। सुनहली किरणों से, अन्धकार का समुद्र (जो रात भर शान्त था) आलोड़ित हो उठता है और उसमें खग-रव बुदबुद से बहते हैं। क्षितिज रेखा (जो रात भर मलिन थी) अब मूँगों से आच्छादित तट बनती है। कुन्द सदृश श्वेत मेघ रंग-बिरंगे वितान हो जाते हैं जिसमें कलियों की चटक (खिलने के समय का शब्द) के ताल पर, मानो, तरलप्राण (ढुलकने वाले) हिम-बिन्दु (ओस-कण) नाचते हैं और सुनहले प्रभात में अपने श्याम शरीर को धोकर, भौंरें अपना संगीत (जो रात-को बन्द रहा) दोहराते हैं। सौरभ का केश फैलाकर समीर परियाँ (सुरभित हवा) विहार करती हैं। छोटी छोटी तितलियाँ झूम झूम कर मधु पीती हैं और पल्लव अपने मर्मर में (मानो) प्रेम-गीत गाते हैं। अपने कोमल स्वप्न रूपी पंखों पर चढ़कर नींद से भरी रात्रि क्षितिज के पार उड़ गई और अधखुले दृगों वाले कमल पर विस्मृति का खुमार छा गया है (कमल अभी अधखिले हैं मानो वे विस्मृति के बाद की उस प्रथम मुद्रा में हैं जो नशे की थकावट में होती है, उस समय नशे के आलस्य से नेत्र अधखुले रहते हैं)। प्रभात के समय एक ओर उल्लास है तो दूसरी ओर विषाद के आँसू (ओस)। ठीक उसी प्रकार प्रिय की सुधि आते ही महादेवी का प्राण हँसता और रो देता है।

[१६]

निद्रा रूपी आकाश की शून्यता में, जिस प्रकार, स्वप्न रूपी मेघ बनकर उमड़ आते हैं और कोमल कली की पूर्णता मधु में चुपचाप छलक

कर साकार हो उठती है (कलियाँ पूर्ण होकर चुपचाप खिल उठती हैं) उसी प्रकार अपने दिव्य हृदय में एकाकीपन का अनुभव कर किस शिल्पी ने चुपचाप विश्व-प्रतिमा बना डाली। काल और सीमा (Time and space) के सन्धि-स्थल पर मोम सदृश पीड़ा लेकर, उसे हास अश्रु से बुन कर उसने उस प्रतिमा को आवरण पहनाया। सोने से दिन, चाँदनी रात, सुनहली साँझ और गुलाबी प्रभात जिस पर मिटते-रँगते रहते हैं वह कौनसा चित्रपट है? अंधकार के चुम्बन से नभ में अगणित तारे जल उठते हैं (महादेवी की कल्पना है) किन्तु प्रात उसे क्यों बुझा जाता है? चाँदनी के प्याले में निद्रा भर कर रात्रि देवी सबको बाँट आती हैं पर उसका मोल कलियों पर पड़ी ओस के रूप में कौन रो रो कर चुकाता है (कल्पना है कि मधुर निद्रा वाली चाँदनी रात्रि के अन्त में कोई रो देता है)। जब पवन रात्रि के पवित्र आँसुओं (ओस) को धीरे से पोंछता है तब दूसरी ओर प्रभात गालों में सुर्खी-भरे हँसता क्यों है? भौंरे का प्रथम गान कलियों पर मधुर मुस्कान बन उठता है उस समय 'विफल सपनों के हार' (आँसू, यहाँ पर ओस-कण) ढुलकते क्यों रहते हैं? गुलालों (अरुणिमा) से रवि का पथ लीप कर पश्चिम में प्रथम दीप (तारा) जलाकर जब सुहाग भरी सन्ध्या हँसती है और उसके नेत्र से (मानो) स्वर्ण-पराग (स्वर्ण रश्मियां) गिरते हैं, उस समय अन्धकार का एक झोंका उसके वैभव को क्यों नष्ट कर जाता है? क्या सुषमा का सृजन और संहार ही विश्व-जीवन है? उस अज्ञात की, एकाकीपन के दुःख से पूर्ण, दृष्टि से कण-कण स्पन्दित है और उन कणों की साँसों को मिलाकर वही (ब्रह्म) विराट संगीत रचता है। उसी की जलन प्रलय के रूप में सबको डुबा जाती है (महादेवी का विश्वास है कि ब्रह्म अपने एकाकीपन के अनुभव से सृष्टि करता है और फिर प्रलय भी वही करता है)। इस प्रकार आरम्भ से अन्त मिल जाता है और फिर नई सृष्टि होती है; यह संसार एक सूत्र है जिसमें सुख-दुःख, जय-हार गुँथे हैं।

[१७]

जिस प्रकार किरणों की छाया में धूमिल (श्याम किन्तु सजल) बादल आ जाते हैं उसी प्रकार हमारे सुखों के बीच दुःख आता है। उसी बादल की भाँति वह हमारे निदाघ रूपी मानस में वर्षा रूपी करुणा भर जाता है। दुःख में जीवन का रहस्य है; वह एक ऐसा तार है जिसमें अगणित कम्पन (भाव) हैं; विश्व को (प्रेम और संवेदना में) बाँधने वाला सूत्र है वह; नीरस विश्व को वह (मेघ के समान) सजल बना देता है। वह हृदय में बस कर और उसकी निधियों (संवेदना, करुणा) को गिन कर, भिक्षुक रूपी विश्व को, आँसू के मिस, दे देता है (अर्थात् दुःख से संवेदना की अनुभूति जाग्रत होती है)। यह संसार विस्मय से भरा है; इसके प्राणी मूक पथिक हैं जो परस्पर अपरिचित हैं। उन सबके ऐक्यानुभव की ओर संकेत रूप में दुःख की स्थिति है; इसके बिना प्रेम और सम्वेदना का आदान प्रदान नहीं हो सकता। मृगमरीचिका (मोह-के पथ) पर प्यासा आकर, सुख हृदय को संकुचित बना देता है और गर्व से कहता है कि मैं मधु हूँ, मुझे पतझर (दुःख) से क्या काम (सुख स्वार्थ-मय है); किन्तु दुःख के कारण आँसू से आर्द्र जीवन मधुर और उर्वर रहता है (दुखी हृदय में उदार भाव जगते हैं) और छोटे मानस में विश्व-बन्धुता का भाव भर उठता है।

[१८]

'तृप्ति वास्तव में इच्छा का अन्त है जो इच्छित वस्तु के प्रति एक प्रकार की उदासीनता उत्पन्न कर देती है। इच्छा में जो सुख है वह उसकी पूर्ति में नहीं। इसीलिए महादेवी चिर अतृप्ति चाहती हैं। प्रस्तुत गीत में यही भाव स्पष्ट है। पूर्ण व्याख्या आवश्यक न जान कर कुछ शब्दों के अर्थ देते हुए आगे बढ़ता हूँ।'

विभूति=राख, भस्म (ऐश्वर्य); सित=सफेद; असित=काला; सजल=आर्द्र; मुकुरता=नेत्र जिनमें बाह्य विश्व उसी प्रकार झलकता है जैसे दर्पण

में, पुलिन=किनारा; युगकूलों=मिलन-विरह; [आलोक-तिमिर=सुख-दुख; 'तुम हो प्रभात.........पुलक=यदि वह प्रिय प्रभात बनकर आवे तो महादेवी की इच्छा है विधुर निशा (विरह-रात्रि) बन जाने की, जिससे वियोग का समय तो (ओस के रूप में) रोते बीते और मिलने के समय ये छिप जाँये। जिस प्रकार मधुर (प्रेम) पीड़ा के कारण ओठों पर वेदना और हृदय में आनन्द झलकता है उसी भाँति मिलन के समय ओठों में विरह-वेदना और हृदय में पुलकें भर उठें, यह महादेवी की अभिलाषा है। (वे मिलन और विरह दोनों को चाहती हैं)।

[१९]

'जीवन में पग-पग पर, सृष्टि के एक एक स्पन्दन में और उसके क्षण-क्षण में बदलते हुये सौन्दर्य में हमें एक अज्ञात शक्ति की उपस्थिति का भान होता है।' प्रस्तुत गीत में इसी रहस्य की अभिव्यक्ति है। प्राकृतिक व्यापारों की रमणीय कल्पना भी इसमें है। कुमुद......संगीत सा वह कौन है ?

प्रभात में कुमुद के वेदना के दाग (चन्द्र-विरह के कारण गिरे आँसू) को, जब, रश्मियाँ अपने आँसुओं (ओस) से साफ करती हैं (यह महादेवी की कल्पना है) और किसी के निश्वास रूपी हवा को छूकर अनजान तारिकायें चौंक उठती हैं अर्थात् छिप जाती हैं (सवेरे तारों के छिपने की कल्पना) उस समय महादेवी को अस्पष्ट रूप से, किसी के अस्तित्व का भान होता रहता है। तरल मोती सा जलधि=चाँदनी; नैशतम=निशांधकार, रूपहली=चाँदी सी; रजत पारावार=ज्योत्स्ना का समुद्र; सुरभि........उच्छ्वास सा वह कौन है ?=नींद लाने वाले दीर्घ निश्वास के समान ही सुला देने वाले समीर के सुरभित झोंके के रूप में कौन है ? जब........कौन है ?=(प्रभात के समय) जब, बालक रूपी प्रात के गुलाब (लाल) कपोलों पर

जल-विन्दु की भाँति नक्षत्र सूख (छिप) जाते हैं और रश्मियों की सुनहली धारा में स्नान करके, मुकुल (फूल) मोतियों (ओस) का अर्घ्य देकर हँसते हैं (खिल उठते हैं); उस समय स्वप्नों को हटाकर (महादेवी की) आँखों को कोई खोल देता है।

[२०]

'मनुष्य का परिचय देना एक प्रकार से असम्भव है'। जिस प्रकार समुद्र का बुलबुला अपने आदि और अन्त को नहीं जानता, वह उसी समुद्र में बनता और बिगड़ता रहता है; उसी प्रकार मनुष्य-जीवन अनन्त काल में परिचय-हीन बिगड़ता-बनता रहता है। ब्रह्म से निकल कर, न जाने कब से, वह चला है और, न जाने कहाँ, जायेगा।' इस गीत में यही चिन्तन कई प्रकार से व्यक्त है।

नक्षत्र-लोक=आकाश; शतदल=कमल; तरल मोती=पिघले मोती; अनिल के चल पंखों=पवन रूपी पंखों; जन्म......प्रभात=वीणा से निकली झंकार के जन्म के साथ ही विरह (वीणा से) हो जाता है; उसे वीणा के संयोग का (मिलन-प्रभात का) क्या ज्ञान ?; चाह शैशव=बचपन की इच्छायें; पलक-दोलों=पलक रूपी डोली; आँखों का फूल=आँसू एकही आदि-अन्त की साँस=एक ही साँस में जिसका आरम्भ और अन्त है; बीचि-विलास=लहरें; वही...साँस=ब्रह्म ने अपने एकाकीपन की पीड़ा से जो पहली साँस छोड़ी वही मनुष्य है। दृगों...हार=आँखों के आँसुओं में उसी (ब्रह्म) की करुणा है।

[२१]

तुहिन.........अन्वेषण=यह जीवन तुहिन (तुषार) से आच्छादित तट पर (जड़ विश्व पर) मधुदिन (वसन्त) के समान सुन्दर है; स्वप्न की प्रतिमा पर जिस प्रकार हमारी हृदयगत वेदना की छाया पड़कर उसे सजीव सा बना देती है उसी प्रकार जड़ विश्व पर चेतन की छाया

पड़कर उसे सजीव और सुख-दुःख मय बना देती है; यह जीवन स्वप्न (वाह्य विश्व जो स्वप्नमात्र है) और जाग्रत (चेतन) का मिलन है; यह अपनी विस्मृति में किसी को खोजता रहता है (जीवन में मानव चेतन असीम को पाने की अभिलाषा रखता है)। धूलि......संधान= धूलि के कण (मनुष्य के हृदय) में असीम इच्छा है; आँसू की एक बूँद में अपार दुःख का समुद्र है, हृदय की धड़कन में अपार स्वप्न है; क्षण क्षण में असफलतायें बढ़ती हैं; जीवन में दुःख की साँस और कल्पना का अथक प्रवाह है-एक शाप है और दूसरा वरदान है।

भरे.........अवतार=जिस प्रकार वर्षा अपने हृदय में छवि का मधु-मास (पूर्ण छवि) भरे, आँसू (पानी) और हास (बिजली) लिये-विश्व के कण कण में नव-जीवन डाल जाती है, उसी प्रकार नव-जीवन लिए, रोता-हँसता, उस प्रिय (ब्रह्म) का प्रेम ही छोटे छोटे प्राणों में अंकुरित होता है।

नील.........साकार=असीम आकाश, जलानेवाली अग्नि, शीतल करनेवाले जल, सौरभ फैलाने वाला समीर और असंख्य जीवन उत्पन्न करनेवाली धरा के परमाणुओं से मनुष्य का निर्माण किया गया है।

निदाघों के दिन=क्रोध, ताप; पावस रात=आँसू बरसाने वाली करुणा; सुधा का मधु=सुख; हाला का राग=मद; पवि=कठोरता; नवनीत=कोमलता; निमिष की गति=क्षण भंगुरता; निर्झर के गीत=कलकल सहित अविच्छिन्न गतिशीलता; उर्मि=लहरें; कुहू का तम=मोहान्धकार, बिषाद; माधव का प्रात=उल्लास; क्षुद्रता रज की=हृदय-संकीर्णता; नभ का मान=औदार्य; स्वर्ग की छवि=सुषमा, पुण्य; रौरव की छाँह=पाप, विषाद; अन्तर्धान=लोप; मधु आसव=मधुर मदिरा; दूर.........फूट=महादेवी का मत है कि यद्यपि अपना लक्ष्य दूर है और एक जीवन एक पग है, फिर भी

परिवर्तन के रूप में अवश्य कोई हमें उस इष्ट की ओर खींचता है, जसे रात्रि का अन्तिम पहर गहनतम होता है किन्तु प्रभात से उसका मिलन-क्षण निकट आता रहता है और बादल सघन होने पर ही जल-कण में बरस कर सफल होते हैं (अपने लक्ष्य को प्राप्त होते हैं)। मृत्पिण्डों=मिट्टी के ढेले; विफलता में है पूर्ति विकास=विफलताओं के पथ से ही हम पूर्ण तक पहुँचते हैं।

[२२]

चिर यौवन-सुषमा वाली प्रकृति और विषाद-जर्जरित मानव-जीवन दोनों की झाँकी महादेवी ने ली है। प्रकृति में जितना आह्लाद है, जीवन में उतना ही अवसाद। यही भाव इस गीत का विषय है।

हिम-हीरक=हीरे के समान ओस कण; प्राणों का पतझर=निराश जीवन

[२३]

महादेवी प्रिय से उपालम्भ के रूप में कहती हैं कि आपने यह जीवन का वरदान क्यों दिया क्योंकि उसमें वेदना है, स्वप्न हैं, असीमावस्था की धुँधली स्मृति है और है सुषमा की क्षणभंगुरता। जीवन का मार्मिक चित्र इस गीत में बन सका है। स्मृतियों की कम्पन=जीवन में उस समय की स्मृति अस्पष्ट रूप से जगती रहती है जब हम असीम थे। उन्मीलन=जगना; स्वप्न लोक की परियाँ= वे इच्छायें जिनकी पूर्ति स्वप्न में ही सम्भव है; झंझा का शैशव=वेदना और करुणाश्रु भरा विषाद; अनुरंजित कलियों का वैभव=उल्लास, उन्माद; मलय पवन गान= जीवन में प्रेम एक ऐसा संगीत छेड़ देता है जो लहरों के समान नीरव होना नहीं जानता;

[२४]

'बचपन में हमारा हृदय स्वार्थ की संकुचित सीमा में बँधा न रह कर उदार रहता है, मेघों के साथ हम, उस समय, रोते हैं, बिजली से खेलते हैं और फूलों के साथ हँसते हैं। हमारे उस जीवन में सहानुभूति भरी

रहती है; दूसरों का सुख हमें हँसाता और उनका दुःख हमें रुला जाता है। बड़े होने पर हम स्वार्थपूर्ण होते होते विश्व से अपनी अलग स्थिति बना लेते हैं; प्रकृति का सहचर नहीं रह पाते।

इस गीत में महादेवी पहले उसी अबोध जीवन की याद करती हैं और फिर अपने बाद के संकुचित जीवन पर पश्चाताप करती हैं। (इस भाव से इस गीत का आशय समझना चाहिये; कुछ कठिन अर्थ नीचे दे रहा हूँ)।

किरणों.........छाया=किरणों में विविध रंग देखकर और यह सोच कर कि ये रश्मियाँ तितली के पंखों के रंग चुरा रही हैं, बचपन में महादेवी तितली को छिपा लेने के लिये व्याकुल हो उठती रहीं।

जब.........पाँतें=निश्वासें (प्रभातकालीन वायु के रूप में) छोड़ती हुई रात, जब, तारे पिघलाती रहीं (उसके नेत्र रूपी तारे पिघलकर, मानो, आँसू रूपी ओस बनकर गिर जाते)। स्मित.........विनिमय=बचपन में महादेवी का हृदय विश्व के सुख दुःख में साथ देता रहा; तब.........परिचय=छोटे हृदय में सारी सृष्टि को एक समझने के कारण असीम भाव थे। मन.........पीड़ा=प्रकृति विस्मय से भरी थी किन्तु अपने से भिन्न उसके प्रत्यक्ष दर्शन से महादेवी के हृदय में एक पीड़ा की अनुभूति भी होती थी। विस्मृत के सपने=प्रपंच-विहीन मधुर जीवन; जाती.........बनकर=(उस भोलेपन में) जो करुण घटा वर्षा सदृश संवेदना) कण कण में नई जान डाल जाती थी (उसके कारण विश्व के कण कण में अपनी छाया दीख पड़ती थी) वह अब (बड़े होने पर) संकुचित हो जाती है; अब अपने ही सुख में हँसी और दुःख में आँसू हैं। अपनी.........निर्वासित=साधों की कम्पन (इच्छायें) और सपने सब अपने ही बारे में हैं; वह बचपन का असीम भाव अब नहीं रहा; मानो समुद्र रूपी जीवन सिकता-कण (सीमित हृदय) में विलीन

हो गया। अस्फुट.........एकाकीपन पर-मर्मर में अपनी कलकल मिला कर आज भी इस अनन्त विश्व में निर्झर संगीत गाते हैं; मानो हमारा ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए उत्सुक, नभ, रात भर जगता है और अन्त में उसकी पलकें बन्द हो जाती हैं (तारों के बुझने की कल्पना); सुरभित समीर भी हमारा स्पर्श करता है; ये सभी पूर्व परिचित साथी हमारा मुख देख रहे हैं किन्तु हम किसी न किसी अभाव में उदास और रोते ही रहते हैं। मैं.........उजियाली में=स्वार्थ में, अनुदार जीवन में, चिरसुख खोजना मानो जुगनू के प्रकाश में दिन को देखना है। मन...... प्याली में=मानव जीवन सदृश सुनहले समय में केवल स्वार्थपूर्ति का प्रयत्न करना मानो हीरे की प्याली में बालू बटोरना है।

[२५]

इस गीत में प्राणों के अंतिम पाहुन (मृत्यु) का चित्र है; मृत्यु जीवन का चरम विकास तो है ही, 'वह लम्बी यात्रा से थके प्राणों को विश्राम देकर नवजीवन के प्रभात में लक्ष्य-पथ पर अग्रसर होने का उत्साह भी देती है'। अतएव उससे डरने की आवश्यकता नहीं है।

पाहुन=अतिथि; चाँदनी-धुला=चन्द्र की आभा से प्रकाशित; अंजन=श्याम; वारिद=नवजीवन प्रदान करने वाले बादल सा। जो... जीवन=थके पथिक को विश्राम देने के लिए, जैसे, पलकों में नींद भरने वाली रात आती है उसी प्रकार मृत्यु आवे। अज्ञातलोक=अन्तरिक्ष; छायातन=छायामात्र जिसका शरीर है वह मृत्यु; सस्पन्द=गतिशील; निधियाँ=सुख दुःख; व्यापार-विसर्जन=जीवन का (जिसमें सुख दुःख का व्यापार होता है) अन्त; मधु से=विश्व-संगीत के माधुर्य से; दिव=स्वर्ग;

[२६]

महादेवी का वह क्रीड़ा-प्रिय प्रेमी इनसे लुका छिपी खेलता है और

ये इसी उलझन में हैं कि इसको कैसे पकड़ा जाय ? प्रस्तुत गीत इसी उलझन को व्यक्त कर रहा है। गीत के शब्द भी सरल हैं।

[२७]

कवयित्री का कहना है कि उनके आँसू मानो पानी हैं जिसमें सुख दुःख के पंक हैं और स्वप्न बुद्‌बुद् हैं। वह बहुत दिनों से अधीर होकर बह रहा है। जीवन रूपी पथ के दुर्गमतम तल को इसने सजल बनाया है (अर्थात् जीवन की कठिनाइयाँ आँसू से नम हैं) और यह दोनों प्यासे किनारों को (मिलन-विरह को) शीतल करता है। इस अश्रु रूपी पानी में हृदय रूपी श्वेत कमल उत्पन्न हुआ है जो कोमल, लज्जित और (विरह) से मुरझाया सा है। इसमें प्रेम की मधु पीड़ा मानो सौरभ है। इस हृदय रूपी कमल में अब पंक (दुःख, वासना) का नाम नहीं, सलिल (भौतिक सुख) भी इस पर ठहर नहीं पाता; इसे विश्व रूपी भौंरे जगा नहीं पाते हैं। महादेवी की अभिलाषा है कि यह हृदय कमल उस प्रिय की करुणा से पले, उसकी चितवन से और उसके श्वासों को छूकर खिल उठे।

[२८]

वसन्त-रजनी का रमणीय चित्र प्रस्तुत करने वाला यह गीत छाया-वाद का सुन्दर उदाहरण है।

वलय = घेरा; भर......तरंगिणी = नदी की गति से; दुकूल = दुपट्टा; अभिसार = प्रिय से मिलने के लिए संकेत-स्थल को जाना; सुन........अवनी = किसी अज्ञात प्रिय की आहट से, मानो, पृथ्वी भी प्रसन्न हो उठी (प्राकृतिक सुषमा में छिपे सुन्दरतम का आभास इस पंक्ति में है)।

[२९]

शेफाली = काले फूल की नेवारी; मौलश्री = वकुल (वृक्ष विशेष); बुनते..... जाली = नव प्रवाल (मूँगे से नवीन पत्ते) वाले कुंजों में (पत्तों

के बीच से आने वाली किरणों के कारण) प्रकाश और छाया दोनों हैं मानो रजत (चमकीले श्वेत) और श्याम (काले) तारों की जाली बुनी है। अरुण......रोली = अरुण रूपी (ओस से) आर्द्र पाटल मानो अन्धकार पर पराग रूपी रोली छिड़क रहा है (सायंकाल की अरुणिमा से तात्पर्य है)। मृदुल......सुनाते = मानो दर्पण रूपी तालाब को अंक में लेकर निशा (प्रिय को प्रसन्न करने के लिए) नील कमल रूपी नेत्रों में अंजन लगा रही है। उस विरहिणी के आँसू ही मानो तारे हैं, फूल उसके प्रतीक्षा-भरे मधुर भाव हैं और रह रह कर वानीरों (बेंत) के वन भी, मानो, करुण विहाग सुनाते हैं। उन्मन = उन्मत्त; जीवन...... पुलकित सा = जीवन रूपी जलकणों से बना हुआ, अभिलाषाओं के इन्द्रधनुष से रंग-विरंगा यह जगत आर्द्र (अश्रुपूर्ण) बादल सा धूमिल (दुःख पूर्ण), नित नया, करुण और पुलकित है। तुम......घर = जैसे बादल में बिजली चमकती है उसी प्रकार महादेवी की इच्छा है कि वह प्रिय (स्वप्न बन कर) इनकी पलकों में उतर आये। पुलक....भर भर = प्राकृतिक मधुर व्यापारों को देखकर महादेवी के हृदय में भी प्रिय-मिलन के मधुर भाव आकर उन्हें सिहरा देते हैं और वे पुलकित हो उठती हैं!

[३०]

यदि सपने में भी महादेवी को वह 'प्रिय' मिल जाता तो उस छोटे क्षण में ये क्या क्या कर डालतीं इसी की अभिव्यंजना इस गीत में है। उस समय असीम को वे अपनी लघु सीमा में बाँधने में समर्थ होतीं।

तारोंमय.........अपने में = तारों सहित आकाश को अपनी आँखों में बसा लेती (असीम को बाँध लेतीं या स्वयं असीम होकर सबको अपने में समा लेतीं)। शाप = जीवन का शाप; पतझर = विरह दग्ध-जीवन; मधु का मास = मिलन का समय; साँसें........अपने में = वह क्षण अमर हो उठता और स्वप्नों के ऐसे कई बन्धनों में ये मुक्ति को बाँध लेतीं अर्थात् उन सपनों के छोटे-क्षणों में ये मुक्त हो जाया करतीं।

[३१]

कवयित्री को अपने हृदय में छिपे प्रिय का भान है; उनके दुःख को उसी ने मधुर बनाया है; आँसुओं में उसी का प्रेम है, वही नींद में स्वप्न रचता है। वह पकड़ में न आता हुआ भी उनके हृदय में बँधा है। हृदय में छिपे उस प्रिय की स्थिति की अनुभूति महादेवी को गहरी हो चली है। प्रस्तुत गीत इसी को स्पष्ट कर रहा है।

निलय = घर; कौन बन्दी.........विजय में = अपने प्रेम में बन्दी बनाकर और स्वयं पकड़ में न आने पर भी वह प्रिय हृदय में बँध गया। एक.........क्रय में = करुण अभाव (करुणार्द्र होकर निज को मिटा देने) में चिर तृप्ति है। उस (मिट जाने के) छोटे क्षण में निर्वाण के सैकड़ों वरदान हैं (देखिए :—'एक मिटने में सौ वरदान)। इसीलिए महादेवी ने मधुर वेदनाओं को क्रय करके निज को मिटाना स्वीकार किया। वेदना के इस क्रय में उन्हें वह 'प्रिय' (ब्रह्म) मिल गया। दूर के संगीत सा = अस्पष्ट सा; आज.........हृदय में = अपनेपन को खोकर महादेवी ने अपने खोये प्रिय को (विस्मृति में) पा लिया; यह कैसी विपरीत बात है। वे अपने से पूछती हैं कि क्या मेरी विरह-रात्रि मिलन के सुख-भरे दिनों में नहा आई अर्थात् महादेवी को अपने विरहान्त और मिलन के आगमन का अनुभव हो रहा है। तिमिर पारावार = विरह का तिमिर-समुद्र; आलोक प्रतिमा = प्राण-दीपक; आज.........
...सुरभित = अब महादेवी को ज्वाला (वेदना) घनसार (चन्दन) सी मधुर बन उठी है। सुन.........प्रलय में = जीवन और प्रलय एक से हैं; मूक.....लय में = सुख-दुःख दोनों इन्हें प्रिय हैं, गर्वित स्वर्ग मानो, आज धरा को स्वयं झुक कर प्यार दे रहा है और सृष्टि प्रलय से मानो अभिसार करने चली (इसका भाव यह है कि अब वह महान शक्तिमान स्वयं इनके हृदय में आ बसा है; दोनों का मिलन सन्निकट है)

[३२]

महादेवी का जीवन विरह का कमल है। वेदना (पंक) में इसका जन्म और करुणा (पानी) में घर है। दिन कमल के आँसुओं (ओस) को पोंछता है, उसी प्रकार मिलन ही इनके जीवन के आँसुओं को चुन सकता है; रात (वियोग) में दोनों रोते हैं। आँसुओं......गात = जीवन-कमल का उर आँसुओं (ओस) का कोष है और दोनों के नेत्र से वे आँसू निकलते रहते हैं। जल-कणों से बने बादल के समान दोनों क्षणिक हैं; अश्रु..... बात = जिस प्रकार वसन्त में कमल मधुकण लुटाता है उसी प्रकार संयोग-समय (जब ससीम और असीम एक थे) की स्मृति से इनके जीवन में आँसू गिरते हैं; करुण बरसात (विरहानुभूति) दोनों को अश्रुमय कर जाती है। विरह के समय ने दोनों को पल पल में गिरने वाले आँसुओं का हार पहनाया है। जिस प्रकार कमल की कथा वायु में ही भरी रहती है उसी प्रकार इनके विरही जीवन की कथा निश्वासों में ही है।

जो....प्रात = महादेवी जी चाहती हैं कि यदि यह जीवन-कमल उस क्रीड़ा-रसिक का लीला कमल बन जाय तो उस अनुपम प्रिय के हास रूपी प्रात को देख कर वह खिल उठे।

[३३]

बीन......प्रवाहिनी = मानव-शरीर ब्रह्म की बीन है और इसमें उसी की रागिनी है; वही इस बीणा पर गाता है। सृष्टि के पूर्व, जब कण कण निस्पन्द था, तब मानव-प्राण भी (असीम में) सो रहा था; सृष्टि के आरम्भ के साथ ही मानव-जग की प्रथम सृष्टि हुई। प्रलय में भी मानव-प्राण असीम में छिपा रहता है; सृष्टि के आरम्भ से अन्त (प्रलय) तक प्राण चलता है; एक जीवन उस यात्रा का एक पद-चिह्न है। मानव-जीवन एक ऐसा वरदान है जो बन्धन के कारण शाप बन उठा है। मानव कूल और कूलहीन सरिता दोनों है (विश्व में जड़ और चेतन सब ब्रह्म

के अंश से ही हैं; मानव उसी असीम का एक अंश है, उसमें भी जड़ शरीर, (जो चेतन का बन्धन है), और चेतन, जो असीम है, दोनों का योग है। इसी आशय की अभिव्यक्ति यह वाक्य कर रहा है)।

नयन..... सुहागिनी = मनुष्य के भीतर ही ब्रह्म है, फिर भी, वह, अज्ञानता के कारण, दूर भी है। मानव एक ऐसा प्यासा चातक है जिसके नेत्र में ही वह स्वाति (प्रिय, ब्रह्म) छिपा रहता है; प्राण में शलभ (प्यारे) को बसा कर जलने वाला वह दीपक है; फूल (प्रिय) को हृदय में लिये विकल बुलबुल है; शरीर से अभिन्न होकर भी भिन्न लगने वाली चंचल छाया सा वह ब्रह्म से एक होकर भी भिन्न सा है। आत्मा अपने प्रिय से दूर रह कर भी अखण्ड सुहागिनी सा है। आग.... दामिनी = (विरह की चिर जलन से) मानव आत्मा एक ऐसी आग है जिससे हिमकण (शीतल आँसू) झरा करते हैं; मानव-जीवन एक ऐसा शून्य-काल है जिसे चलने के लिए पल (क्षण) के पाँवड़े बिछे हैं (पल-पल करके जीवन बीतता रहता है); वह कठिन पत्थर (दुःख) में पला हुआ फूल है; आधार (ब्रह्म) का ही वह प्रतिबिम्ब है; वह नीलघन (ब्रह्म) और उसमें छिपी तथा क्षण भर को प्रकाशित बिजली (मानव) भी है। नाश.........तम = मनुष्य का जीवन क्षण क्षण नष्ट होता रहता है किन्तु इस प्रकार वह (नाश-पथ) से पूर्ण विकास की ओर बढ़ता है; चेतन में त्याग का प्रकाश और जड़ शरीर में आसक्ति का अन्धकार भी है (अथवा उसमें विषय वासना का त्याग और ब्रह्म के प्रेम की आसक्ति दोनो हैं)। तार........ चाँदनी = मानव जड़ और चेतन का योग है अतः जड़ भी वह है और चेतन भी; वीणा का तार (जड़ शरीर), उसका आघात (प्रेरणायें) और झंकार (कम्पन, अनुभूतियाँ) आदि सब वही है; उसी प्रकार वह पात्र (शरीर), मधु (भाव, इच्छायें) और उन्हें पीने वाला मधुप (अतृप्त हृदय) तथा मीठी विस्मृति (नशा) भी है; वह

(ब्रह्म का) अधर और उसपर छिटकी हुई चाँदनी सी स्मित (मानव) भी है।

[३४]

यह गीत सरल, किन्तु मोहक, ढंग से प्रकृति का चित्र-विशेष प्रस्तुत कर रहा है। पाठक इसे स्वयं समझ सकते हैं।

[३५]

तुम-क्या ? = ब्रह्म तो मानव-हृदय में है, फिर उसका परिचय कैसा ? स्मृति=उस स्थिति (जब मानव चेतन असीम के अंक में था) की स्मृति; पलकों........गति=हमारी पलकों की मौन गति उसी ब्रह्म के पद की नीरव गति है क्योंकि ब्रह्म का आगमन नीरव होता है। तेरा...... ...प्रलय=ब्रह्म का हास अरुणोदय (नव-सृष्टि) है जिसमें यह संसार जग कर खेलता है और उसकी परछाईं विषादपूर्ण रजनी (प्रलय) है जिसमें स्वप्नभरी नींद है; सृष्टि और प्रलय दोनों का सम्बन्ध उसी ब्रह्म से है। संसार सृष्टि में खेलता और प्रलय में थक कर सो जाता है। हारूँ.........विजय क्या=महादेवी कहती हैं कि यदि इस लुका-छिपी में मैं हार जाऊँ तो मेरा अपनापन नष्ट होगा, मैं उसी में लुप्त हो जाऊँगी और यदि जीत गई तो उस असीम ब्रह्म को ही अपने में बाँध लूँगी; अतएव मेरी जीत और हार दोनों एक सी हैं।

[३६]

दीपक=प्राण का प्रतीक है; सौरभ = प्रेम; शीतल = जिसमें प्रेमकी अग्नि न हो; कोमल = वेदना सहने में असमर्थ; नूतन = नवीन प्रेमी; मेरी......चंचल = अपने प्राण-दीपक से कवयित्री कहती हैं कि तुम मेरी निश्वासों से बुझने का डर न करो (प्राण यह न सोचे कि विरह के दीर्घ निश्वासें छोड़ते-छोड़ते वह बुझ जायेगा) क्योंकि जैसे दीपक हवा से न बुझे इसलिये उसे अंचल की ओट में रखा जाता है उसी प्रकार इन्होंने अपनी पलकों

को बन्द करके पुतलियों में प्रिय का चित्र अंकित किए वाह्य विश्व को भीतर न घुसने देकर प्राण को बुझने से रोक रखा है। तम......चक्ष = अन्धकार (मायापूर्ण विश्व) के कण कण में बिजली के समान प्रकाश भर दे। तू.........खिन्न = दीपक जलकर जितना क्षय होगा, उसका निर्वाण-क्षण (प्रभात) उतना ही निकट आयेगा और अन्त में वह प्रभात की ज्योति में मिल जायगा; उसी प्रकार प्राण जितना ही जलेगा उतने ही शीघ्र वह छलनामय (ब्रह्म) पास आयेगा और यह उसकी मुस्कान में घुल जायगा और प्रसन्न हो उठेगा।

[३७]

राग = अरुणिमा (प्रेम); कड़ियाँ = बन्धन; श्वासें......बह जाता = श्वासों में प्रिय के आने का और निश्वासों में उसके जाने का संकेत महादेवी को होता रहता है (प्रतिपल इन्हें हृदय में उसकी स्थिति का भान होता है पर ये उसे पा नहीं सकती हैं जिससे विरह भी बना रहता है); उस अज्ञात को आँखों ने जान रखा है और हृदय का तो उसके साथ चिर नाता है। सुधि (स्मृति) में (उस समय का, जब असीम और ससीम एक थे) प्रेम भरा स्वप्न क्षण-क्षण नवीन बन कर आता है जिसके कारण महादेवी का सुख (विरहानुभूति के) आँसुओं में बह जाता है किन्तु दुःख पड़ा रह जाता है।

[३८]

महादेवी कहती हैं कि हे प्रिय ! मैं तुम्हारे पास सन्देश कैसे भेजती क्योंकि मेरे दोनों नेत्रों की मसि-प्यालियों से श्वेत आँसू रूपी स्याही निरन्तर गिर रही है, (फिर) भी क्षण-क्षण रूपी उड़ते पृष्ठों पर मैं सुधि रूपी लेखनी से श्वासों के अक्षर लिखती हूँ किन्तु (स्मृति के कारण) बेसुध होकर, कुछ का कुछ लिख जाती हूँ। छायापथ (अकाशगंगा, स्वप्नलोक) में कितने (छाया रूप) दूत आते जाते हैं, उनके संकेत क्षण

में रहस्य भरे और क्षण में परिचित लगते हैं जिसके कारण भ्रान्ति हो जाती है। वह परिचित दूत नहीं मिलता जिससे मैं अपने हृदय की बात कह सकूँ। कठिनाइयाँ और भी हैं; किसी अनजान तट से चमकती किरणों को प्रवाल तरणी (अरुणिमा में) भर कर, अन्धकार के नीलम-कूलों (रात के नीले नभ से तात्पर्य है) पर लाने वाली ऊषा मेरी करुण कहानी (जो मैं लिखना चाहती हू) में अपनी मुस्कान आँक जाती है (ऊषा मेरे करुण जीवन में क्षणिक हास भर जाती है); केशर पट (पीलेपन) में सजी, तारों की बेंदी दिये, आँखों में अन्धकार का अंजन लगाये, पग में मेंहदी (लालिमा) भरे, मदिरा से पूर्ण, अनुराग-सुहाग भरी सन्ध्या के मधुरस के कारण भी मैं अपना पूरा विषाद लिख नहीं पाती (क्योंकि सन्ध्या मुझे मधु सिक्त कर जाती है)। और, बादल के नये आवरण में लिपटी, अपने तारे रूपी नेत्रों में करुणा भरे, पद-ध्वनि से सपने जगाती हुई और मूक श्वासों से अन्धकार फैलाती हुई निशा, निराशा के कारण, अभिसारों में (कल्पना है कि रात अपने इस रूप में प्रिय से मिलने के लिये आती है) रो रोकर आँसू (ओस) गिराती है जिसके कारण मेरी प्रार्थनाएँ, जो मैं आपके पास भेजना चाहती हूँ, धुल जाती हैं (आशय यह है कि अभिसारिका निशा के निराश आँसुओं को देख कर महादेवी भी निराश हो जाया करती हैं);

[३९]

विश्व एक दर्पण है जिसमें वह प्रिय ही झलकता है। भ्रम से उसमें पड़े प्रतिबिम्ब अपनी भिन्न सत्ता मान लेते हैं। इसी विश्व के परदे में ब्रह्म आँखमिचौनी खेलता है। जो इसे जान लेता है फिर उसके लिये कैसा दुःख-सुख, कैसी ममता, और कैसा मिलन-विरह ? वह विश्व में अपनी छाया पाता है; उसके लिए विश्व ब्रह्ममय हो उठता है। इसी आशय को यह गीत व्यक्त करता है।

दर्पण = जग; 'मैं' = आत्मा; 'तुम' = ब्रह्म; पतझर = विषाद; सावन = उल्लास; तम = शून्य, अपनापन = अहंभाव, तुम मुझमें.........दुख प्रियतम = जब आत्मा और परमात्मा का मेल हो जायगा (बीच का परदा हट जायगा) तो आत्मा का दुःख ब्रह्म में विलीन हो जायगा और ब्रह्म का सुख आत्मा को स्वतः प्राप्त होगा, यही इस वाक्य का संकेत है।

[४०]

महादेवी जी उस अज्ञात चित्रकार से पूछती हैं कि क्या मैं कमलदल (विश्व) पर किरण-अंकित चित्र हूँ जिसे आपने बादलों की प्यालियों (भावों) में माधुर्य (चाँदनी का सार) भरकर इन्द्रधनु (अभिलाषाओं, अरमानों) की तूलिका से प्रेमपूर्वक रँगा है। क्या मेरे ये गहरे रंग समय के आँसुओं से धुल जाँयगे। स्मृति में बिजली (कसक), वेदना में वर्षा की रात (साश्रु विषाद) और सपनों में वसन्त-प्रभात (मधुर उन्माद) आपने भर दिया है। इन्हीं से मेरा श्रृंगार है। क्या ये मेरे श्रृंगार शिरीष-कुसुम की भाँति यौंहीं कुँम्हला जायँगे? इस देश (विश्व) से मेरा कई युगों का परिचय है; यहाँ के कण-कण में मेरी अभिलाषा भरी है। क्या मेरे ये चिह्न नष्ट हो सकेंगे? मेरी गति से निमिष-पल काँपते हैं, मैंने आँखों में निःसीम को बाँध रखा है, फिर भी क्या मेरा प्राण मृत्यु के हृदय में समा पायेगा (अर्थात् क्या मेरा प्राण नष्ट हो जायेगा?)। आपने विश्व में मेरे हृदय की प्यास क्यों भर दी (अर्थात् जिस प्रकार मैं प्यासी हूँ उसी प्रकार यह विश्व क्यों प्यासा है); अश्रुपूर्ण विषाद और पुलकें (जो मुझे प्राप्त हैं) संसार भर में क्यों हैं। क्या मेरे ये उपहार मेरे मिट जाने के बाद भी बने रहेंगे?

[४१]

महादेवी को अपने मिलन-क्षण के नैकट्य की अनुभूति हो रही है। वाह्य संसार में भी इसका संकेत मिल रहा है।

बिजली (वेदना) के सुनहले बन्धन में बँधा, रोता बादल भी हँस रहा है; सागर आज अपनी ज्वाला में गा रहा है; दिन और रात में सोने (दिन का प्रकाश) और चाँदी (ज्योत्स्ना) का आदान प्रदान हो रहा है (दिन और रात मिलन कर रहे हैं)। तारक-बालायें नाच-नाच कर, नूपुर के मोती (ओस) बिखरा रही हैं, हिमकणों (ओस बिन्दुओं) पर मलयानिल परिमल भर रहा है, और भटके यात्री के समान जीवन के मतवाले क्षण बार बार लौट रहे हैं (पूर्व मिलन की स्मृति आ रही है); घनी वेदना रूपी अन्धकार में स्मृति सुख का सोना (प्रकाश) भर रही है (वेदनापूर्ण जीवन में मधु दिन की सुधि से क्षणिक सुख हो लेता है); पलकों में स्वप्नों के कारण आँसू का गिरना बन्द है; नेत्र और कान एक बन चले हैं (प्रिय को देखने और उसकी बातें सुनने की एक समान ही आकुलता है); रोम रोम में हृदय की एक नवीन प्रेरणा हो रही है और प्राणों के छाले (दुःख) पुलकों के कारण फूल से खिल उठे हैं।

[४२]

महादेवी कहती हैं कि मेरे नेत्र निरन्तर आँसू बरसाते रहें। इनकी इच्छा है कि युग युग से मोती सी उज्जवल आभा वाली तारकावली उस प्रिय की माला हो और क्षण-क्षण बनने मिटने वाली बिजली इनका कंकण बने। चाँदी (चाँदनी) और सोने (सुनहले प्रकाश) से रात दिन ने जिसे लीपा वह आकाश उस प्रिय का हो और पल पल मिटने वाले मेघ इनके हों; (इसका अभिप्राय इतना ही है कि वह प्रिय चिरज्योतिर्मय और सुषमामय रहे और ये क्षण-क्षण बनती बिगड़ती रहें)। इसी प्रकार पद्मराग (रत्न) सी कलियों और नीलम से भौरों वाला सुरभित नन्दन वन वह प्रिय हो और ये अश्रु (ओस) से बोझिल लघु तृण हों; नीरव अन्धकारपूर्ण, नभ सा विस्तृत, हास-अश्रु-रहित सूनापन प्रिय का हो और, इनका हो सुख-दुःख भरा जीवन; निर्वाण और मुक्ति, जो ब्रह्म

में मिलने के साधन हैं और जिनमें न पीड़ा है न स्मृति, प्रिय (ब्रह्म) के हों किन्तु जीवन के बन्धन इनके हों। बुद्बुद् (प्राण) के असंख्य भँवरों वाली सृष्टि और असंख्य जीवनों को कण में समेटने वाला प्रलय उस प्रिय के हों पर बनने मिटने वाले क्षण महादेवी के। रंग-विरंगा, विभव-पूर्ण सम्पूर्ण संसार उनका हो और वह निर्मम प्रिय क्षण भर को इनका बन जाये।

[४३]

महादेवी कहती हैं कि हे मन तू प्रिय का नाम जप। मैं उस असीम प्रिय (ब्रह्म) में मिट गई ('मैं ब्रह्म हूँ' की भावना की ओर यहाँ संकेत है) और वह मेरे हृदय में आ बसा है; अतएव अब मेरी विरह-रात को मिलन-प्रभात ही समझना चाहिए। मेरा मधुर क्रन्दन वर्षा-काल है, जैसे वर्षा का जल ग्रीष्म के संताप को धोकर विश्व को शीतल कर जाता है उसी प्रकार मेरे आँसू दुःख को आर्द्र कर विश्व को शीतल कर रहे हैं। मेरी जिस नींद (सृष्टि के पूर्व ब्रह्म के साथ सोते रहने की स्थिति) को दिन (सृष्टि-काल) चुरा ले गया वही अब स्वप्न बन कर मेरी पलकों पर आती है, इसलिये मेरे स्वप्नभरे जीवन को, नींद नहीं, वरन् जागृति (सृष्टि) की हलचल ही समझना चाहिए। रात प्रिय की काली पुतली और दिन उसका हास है; इन्हें प्रिय का मधुर उपहार कहना चाहिए। मेरे श्वास से स्पन्दन झर रहे हैं (शरीर निस्पन्द हो रहा है) और आँखों से हृदय रिस रहा है (हृदय आँसू बन कर चू रहा है); इसे प्रिय का दान नहीं वरन् निर्वाण का वरदान समझना चाहिए। जीवन अस्थिर क्षणों का संचय है जो क्षणभंगुर है, बालू में पड़े जल-विन्दु सा वह पल में नष्ट हो जाता है; यह जीवन वास्तव में प्रिय का निष्ठुर उपहार है।

[४४]

यह गीत वर्षा का एक चित्र प्रस्तुत करता है। वर्षाकालीन मेघ से विरहिणी प्रिय-सन्देश की आशा करती है। पावस-काल विरहिणियों

को विशेष रूप से दुःख देता है। वर्षा को देख कर महादेवी की आँखों में भी आँसू भर आता है। गीत का भाव सरल है।

[४५]

महादेवी जी कहती हैं कि हे प्रिय, मुझे (मोह-निद्रा म) सोते और तुम्हें (मुझे सुलाने के लिए विश्व में छिप छिप कर) लोरी गाते बहुत दिन बीत गए। अब मेरी इच्छा है कि तुम सो जाओ (अपनी क्रीड़ा-समाप्त करो) और मै (तुम्हें सुलाने के लिये गाऊँ) क्योंकि मैंने तुम्हारा संगीत सीख लिया; मेरे स्वप्नों की सेजपर तुम आकर सो जाओ। हे प्रिय, तेरे आकाश रूपी मन्दिर के मणि-दीपक (तारे) बुझ जाया करते हैं, अब मैं अपने प्राण को जलाऊँ जिसके कण कण से बिजली की सी आभा निकलती हैं। तुम जीवन के दुःखों में क्यों आते हो? तुम्हारी सुविधा के लिए मैं तुम्हारे पथ में मोती गलाकर (आँसू) फैला दूँ। पथ की रज में (जीवन के क्षणों में) तुम्हारे पद-चिह्न (संकेत) मिल जाते हैं; मैं उन्हीं क्षणों की स्मृति आँखों में (स्वप्न सा) क्यों न रखूँ? जब हृदय (प्रेमाग्नि में) जल कर सौरभ (मधुर भावों) को फैलाता है तो तुम्हारी याद आ जाती है फिर आँसुओं से, मैं, उस स्मृति को क्यों न सींचूँ अर्थात् क्यों न रोऊँ? काँटों (दुःखों) में पली, तेरी (विश्व-माला की) कलियाँ (प्राण) फूल बन कर खिल उठती हैं, अथवा इन (काँटों में पले) फूलों में तेरी माला का पता लगता है; अतः मैं जग को इन्हीं काँटों का संग्रह करना क्यों न सिखलाऊँ? (शरीर के) छोटे मुकुर में (असीम) तुम पलभर झलक पड़ो और मैं जीवन के क्षण-क्षण को तुम्हारे लिए मुकुर बना डालूँ। आनन्द में तुम्हारा स्पर्श और दुःख में तुम्हारी स्मृति है। इसलिए मैं सबको हँसना-रोना क्यों न सिखलाऊँ।

[४६]

महादेवी कहती हैं कि हे प्रिय तुम दुःख बन कर ही आना। गुलाब के समान मेरे जीवन को शूलों (दुःखों) में खिलने देना क्योंकि जो अपने

हृदय को विंधवायेगा नहीं वह हार नहीं बन सकता। कली से ही निकल कर फिर उसके पास न लौट आने वाला सौरभ मैं हूँ किन्तु उसी कलिका के कारण ही वह सौरभ बन सका। मेरे हृदय को जलने देना और जब यह जल कर राख हो जाय तो आकर अपना पद-चिन्ह अंकित कर देना। अपनी आँख मिचौनी चिर कर दो, (मुझे चिर-मिलन नहीं चाहिए); जीवन में मैं तुमको खोजूँ और मिट कर ही तुम्हें पा लूँ। हे प्रिय, बादल के हृदय में बिजली बन बन कर मिटने के समान ही मेरे हृदय की 'पी पी' की प्रतिध्वनि तुम्हारे हृदय में जगे। मेरे सुख, दुख, सपनों और श्वासों में आकर यदि आप चुपचाप भी बस जायें तो भी मन और आँखें तुम्हें जान ही लेंगी। हे प्रिय! जड़ जग में जब तुमने अपने हास से जीवन डाल दिया तभी से (जड़ म बँधे मेरे) चेतन ने रो रो कर हँसना सीखा। जिस प्रकार कुहरा कड़ी धूप में लीन हो जाता है उसी भाँति (मेरे मिट जाने पर) यह जग मुझमें लीन हो जायेगा। कृपया आप मेरी मौन हृदय-वीणा को अपने प्रेम से छूकर जगा न देना (मुझे मौन मिट जाने देना)।

[४७]

महादेवी अपने प्राण से कहती हैं कि हे करुणा भरे मेरे प्राण! तू, करुणार्द्र हृदय वाले, त्यागपूर्ण, प्रति व्यक्ति के दुःख को दूर करने के लिए नित भ्रमण करने वाले, शूल को फूल की भाँति छूकर सन्ताप को चन्दन सा शीतल समझने वाले 'गौतम' के पदचिह्नों पर चल। शंख में (पाप का) नाश और मुरली में प्रेम का वरदान छिपाये, दृष्टि से जीवन-दान करने वाले तथा स्मित से सुन्दर सृष्टि रचने वाले कृष्ण, जिसने अपनी वंशी के स्वरों में प्रेम का संसार रचा, की प्रेम-रागिनी अब भी दूर सुनाई दे रही है! तू उसी रागिनी का अनुसरण कर! रात के अन्धकार में अपने मधुर श्वासों से कण कण को सुरभित करने वाले, काँटों पर सोने वाले तथा आँसुओं (ओस-कणों) के हार पहनने वाले प्रभात-

कालीन गुलाब सा, मेरे प्राण ! तू भी आज हँस। तुम्हारी विरह-रात बीत गई।

[४८]

वाह्य पूजा की क्या आवश्यकता जब भगवान का मन्दिर अपना जीवन है ? यह गीत इसी भाव को रूपकों द्वारा व्यक्त करता है। रूपक सरल हैं; इसीलिए और संकेत की आवश्यकता नहीं है।

[४९]

सान्ध्य गगन से, महादेवी, अपने जीवन की समता रूपकों द्वारा इस गीत में बता रही हैं। कुछ कठिन अर्थ नीचे दिए जा रहे हैं :—

यह.........विराग = सन्ध्याकालीन धुँधले क्षितिज के समान विराग (विश्व के प्रति उदासीनता का भाव); नव अरुण = प्रभात-कालीन अरुण सा अथवा नवीन सिन्दूर सा; अरुण = सन्ध्या-राग; वीतराग = उदासीन; सुधिभीने = प्रिय-मिलन की स्मृति से भरे; संध्या.........चितवन = सन्ध्या और आकाश के मौन मिलन सा ही महादेवी का उनके प्रिय के साथ मौन मिलन होता रहता है जिसका संकेत महादेवी की (प्रिय को पकड़ न पाने से) रोती और (उसके दर्शन की अनुभूति से) हँसती आँखों में है।

लाता भर.........पाहुन = श्वास रूपी समीर जग की स्मृतियों रूपी गन्ध ला रहा है जिससे जीवन और मृत्यु रूपी किनारे सुरभित हैं। महादेवी के पुलकित रोम मानो सन्ध्याकालीन प्रफुल्लित कैरव हैं। सन्ध्या के समय जिस प्रकार, दिन के आदि और अन्त, एक से होकर, मिलते हैं (देखिये :—'आदि में मिल जाता अवसान'), उसी प्रकार 'विस्मृति-अंक में' महादेवी के भी आदि और अवसान एक हो उठे हैं (नोट :—'आदि-अन्त' से रात्रि का आदि और दिन के अन्त से भी अभिप्राय हो सकता है; किन्तु मुझे यह अर्थ अच्छा नहीं जँचता) मानो

रही हैं। तेरी लाल-पीली चूनरी में नीलम-पराग भर गया है। रेखा सी सूक्ष्म अन्धकार की लहर तेरे पद को छूकर सीमाहीन सिन्धु सी बन चली है, बादलों की कोमल नौका पर चढ़ कर तेरे रँगीले गीत क्षितिज के पार जा रहे हैं (उपर्युक्त पंक्तियों में कल्पना का रंग गहरा है)। न जाने किस मधुर स्वप्न (छायालोक) की स्मृति में, द्रुत गति से आते हुए प्रिय के पद-चिन्ह झलक उठते हैं (यह सन्ध्याराग की कल्पना ज्ञात होती है) और मिलन-नैकट्य की अनुभूति के कारण तुम्हारी पलकों में आँसू (ओस) गिरकर तुम्हारे हँसते ओठों को गीला कर देते हैं (महादेवी के हँसते ओठ भी मिलन की निकटता की अनुभूति के कारण प्रेमाश्रुओं से गीले हैं)

[५१]

महादेवी कहती हैं कि हे प्रिय ! मैं इस जीवन रूपी मन्दिर में तुम्हारी मूर्त्ति ('तुम') बनूँगी (आत्मा परमात्मा की प्रतिमा बन रहा है); शूल (वेदना से) मेरा पूजन होगा और आँसू मेरे अर्घ्य बनेंगे; करुणा में स्नान करने से स्वच्छ, दुःख मेरी पूजा करेगा; (तुम्हारे समान ही) मेरे मूक नूपुर से सारा सूना जग रव-पूर्ण हो चलेगा। मुझसे आकाश कम्पन पायेगा। मेरे चंचल नेत्र आज (तुम्हारे नेत्रों के समान ही) स्थिर रहेंगे; मेरा एक बाल भी न हिलेगा और मेरे स्थिर रोमों में शरीर की सारी गति बन्द हो जायगी (पूर्ण निस्पन्दता होगी)। राग (सांसारिक भोग की लिप्सा) और उसका मद मुझसे दूर है; मुझमें इच्छायें भी अब न रहीं (मैं निरीह हूँ)। मेरे नेत्रों में तुम्हारी मौन कथा रहेगी।

[५२]

महादेवी कहती हैं कि जब वह प्रिय (ब्रह्म) मेरी नींद (असीमावस्था की स्थिति) में मेरे पास (मुझे जगा कर, सृष्टि करके) मेरे आँसू माँगने (मुझे अपने विरह में रुलाने) 'स्वप्न सा' आया, उस समय शून्य

(सृष्टि के पूर्व की शून्यावस्था) में रंग विरंगा संसार प्रकाशित हो उठा, जिस प्रकार दिव (दिन या आकाश) की हँसी से इन्द्रधनुष की सृष्टि हो उठती है। और, जैसे दिन की किरणों में रात का अन्धकार खिल कर प्रकाशित हो उठता है, उसी प्रकार प्रिय-स्पर्श से उत्पन्न रोमांच के के कारण वह सृष्टि के पूर्व क. कम्पनहीन अन्धकार भी सिहर कर खिल उठा। मानो अमावस्या के बाद चाँदनी हो उठी। (सृष्टि के बाद) विरह-वेदना रूपी अग्नि मोम से कोमल हृदय में बस गई और विश्व ने मृत्यु रूपी अंजलि में जीवन रूपी अमृत भर दिया। फिर जिस प्रकार पतझर के बाद अपना नूतन वैभव लिए वसन्त आता है उसी प्रकार मृत्यु के बाद नव-जीवन प्राप्त होता रहा। अन्त में जिस प्रकार, जब कोमल फूल अपनी सुगंधि देकर मिट जाते हैं; सूर्य की किरणों में जल-कण होते हैं और फिर वे ही बादल के रूप में साकार हो उठते हैं, तब उनके नाश को अंक में लिये पुनः अनन्त विकास आता है, उसी प्रकार सृष्टि के अवसान की स्थिति में पुनः नूतन सृष्टि रचने के लिए वह ब्रह्म मेरे पास आया।

'था'

महादेवी कहती हैं कि नींद में, स्वप्न सा, जब वह प्रिय मेरे अश्रु माँगने (मुझे हँसाने) आया तो मेरा हृदय उसी प्रकार खिल उठा जैसे दिन की हँसी से आकाश में इन्द्रधनुष की सृष्टि हो जाती है। और जैसे दिन की किरणों में रात का अन्धकार खिल उठता है वैसे ही (प्रिय-मिलन के कारण) मेरे रोमांचों में विरहान्धकारपूर्ण जीवन भी हँस उठा। विरह रूपी अमा के बाद मिलन रूपी चाँदनी आ गई। मेरे मोम से हृदय में विरह-वेदना की अग्नि, जब, बस गई और विश्व ने जीवन की सुधा से मृत्यु की अंजलि भर दी, तब वह प्रिय मेरे पास उसी प्रकार आया जैसे पतझर से उसके हिम विन्दु (आँसू) लेने और उसे प्रफुल्लित करने के

लिए बसन्त आता है। जिस प्रकार, सुरभित साँस देकर फूल, जब मिट जाते हैं; सूर्य की किरणों में (बाष्प रूप) जल-कण होकर और फिर बादल बनकर पुनः झर कर विलीन हो जाते हैं; तब उनके नाश के बाद अनन्त विकास आता है; उसी भाँति मेरी नींद में वह प्रिय मेरे पास मुझे अपने में मिटा कर मेरा अनन्त विकास करने आया।

[५३]

शशि......शृंगार नहीं ?=इस पद में प्रिय से मिलने के लिए सब शृंगार किए उत्सुक और उसके न आने से हैरान, नायिका की भाँति निशा और महादेवी दोनों के चित्र हैं (महादेवी ने) निशा नायिका के समान शशि (ब्रह्म ज्ञान) के दर्पण में देख देख कर अपने काले केश (अन्धकार, मोह) को साफ किया और किरणों (ज्ञानपूर्ण विचारों) में तारे रूपी पारिजात (पवित्र प्रेम-भाव) बाँध कर अपने बालों में (तिमिराच्छन्न जीवन में) गूँथा; फिर इनका यह नूतन शृंगार उस प्रिय को क्यों लुभा न पाया ?

स्मित......मनुहार नहीं=अपने (दुःख के कारण) फीके ओठ को अपनी मुस्कान से अरुण करके, चरणों को गति रूपी महावर से लाल किये, (आँसू से) गीली अपनी पलकों में सपनों का अंजन लगा कर, और मांग में (मोती की) अश्रु-माला सजाये, महादेवी युग युग से स्पन्दन (कम्पन) के द्वारा अपने प्रिय के पास मनुहार (प्रार्थनाएँ) भेजती रही हैं। मैं......तार नहीं=[इन सबका आशय केवल इतना ही है कि महादेवी ने अपने में एक ऐसा सूनापन बसा रखा है जो अभिसारों में प्रिय को बुलाने के लिए आवश्यक है; इसमें प्रयुक्त कुछ शब्दों के दो दो अर्थ लगाना ठीक नहीं है], कण्टकित=रोमांचित; आलोकयान=प्रकाश, दिन; दिन रात........अभिसार नहीं ?=विरह-पंथ में निरन्तर आगे बढ़ने वाली महादेवी को (व्यर्थ में) मना मना कर दिन

रात रूपी पथिक लौट गये और निमिष (क्षण) भी हार मान कर चले गये (अर्थात् बहुत समय बीत गया)। पर इन्होंने एक न मानी। इनका विरह-पंथ नितान्त सूना है, इनके पास (पूर्व-मिलन की) सुधि एक मात्र पाथेय (सम्बल) है। अतएव इनका अभिसार अब तक पूरा सूना ही है; अब उस प्रिय को आना चाहिए। किन्तु वह इस सूने में भी, इस पार क्यों नहीं आता।

[५४]

महादेवी कहती हैं कि मुझे बन्धन क्यों न प्रिय हों, जब कि तम रूपी सिन्धु का सात रंगों वाला (दिन का) प्रकाश किनारा है (अन्धकार दिन के प्रकाश से बँधा है) और रज (धूल) भरे जगबाल (बादल) से बिजली का अंक मलिन है (बिजली बादल से बँधी है)। मेरे स्मृति-पटल पर अब वह प्रिय स्वयं अपना रूप खींच रहा है। मेरी चाँदनी अमा को भेंट कर उसका अभिषेक कर रही है अर्थात् मेरे बिरहान्धकार पूर्ण जीवन में मिलन-प्रकाश भर उठा है। आज जीवन और मृत्यु, चेतन की जागृति से, एक हैं। मेरा स्पन्दन, जो मेरे प्राण का सन्देश ढोता रहा है, अब प्रिय का दूत बन उठा है (मेरे स्पन्दनों में प्रिय-मिलन का सन्देश भरा है)। मैंने स्वर्णपिंजर (प्रेम भरे हृदय) में प्रलय का वात (विरह का दुःख) बाँध रखा है। आज मैंने घने तम (विरहान्धकार पूर्ण जीवन) को उजाला (मिलन-प्रकाश) बना डाला है। तूल के समान कोमल हृदय में बस कर भी अब (विरह की) ज्वाला चन्दन सी शीतल है (विरह-दुख का शीतल लगना उसके अन्त का परिचायक होता है)। आज विस्मृति-अंक में मुझे प्रिय के पद चिन्ह मिल गए और अब तक के सभी असफल स्वप्न, जिनके व्यर्थ होने पर वेदना होती रही, इस समय (मिलन की निकटता की अनुभूति के कारण वेदना के शीतल होने पर) फिर लौट आ रहे हैं। आज तक की चिर प्रतीक्षा

आँखों में घुलकर अंजन बन गई (अब उसके कारण आँखों में नवीन ज्योति आ गई है)। आज खोज रूपी पक्षी गाता हुआ अपने घोंसले को चला (खोज समाप्त है); और मेरा सुख आँसुओं से प्यार कर रहा है (आँसुओं में सुख भर उठा है), मेरे बीते युग मेरे विकल श्वास रूपी रथ पर चढ़कर चले गए अर्थात् मेरे श्वासों की विकलता बीते युगों के साथ ही चली गई (पाठः- बन गए बीते युगों को विकल मेरे श्वास स्यन्दन)। जिस प्रकार वीणा में बँधे तार में आकाशचारी झंकार बद्ध है और मिट्टी के छोटे दीपक में अन्धकार को दूर करने वाला प्रकाश बन्दी है, उसी भाँति वन्दिनी होकर भी मैंने निर्बन्ध (ब्रह्म) को अपने भीतर बाँध रखा है। जैसे प्रति साँझ के बाद अँधेरा आ जाता है जिसके बाद प्रभात भी आता रहता है, उसी प्रकार पुलक रूपी पंखों वाले विरह रूपी पक्षी पर चढ़कर मेरा मिलन अवश्य आ रहा है। किन्तु मिलन के बाद की स्थिति तममय है या रागमय, इसे कौन जाने।

[५५]

इस गीत में वसन्त की सुषमा वाली प्रकृति का एक चित्र है। वसन्त की मधु-बयार से चारों ओर सुषमा छा जाती है जो हमें लुभाये बिना नहीं रह सकती। उसी प्रकार बीते मधु-दिन की सुधि आते ही हमारा अन्त-र्लोक भी खिल उठता है, उस सुधि में आकर्षण है। इस गीत का अभिप्राय यही है। प्रकृति के सौन्दर्य के प्रति महादेवी का प्रेम भी इस गीत में स्पष्ट है।

[५६]

कवयित्री का कहना है कि प्रिय-मिलन-पथ के शूल मुझे प्यारे हैं। उसकी (पूर्व मिलन के समय की) याद हीरे के समान है और उसको लिए, यह जीवन सोने सा अमूल्य हो उठेगा, किन्तु इसे जल कर खरा (शुद्ध) होना है; इसलिए इस जीवन-सोना को अंगारों (विरह-वेदना) में

तपना चाहिए। अन्धकार रूपी तमाल ने फूल रूपी तारों को गिरा कर जब, दिन रूपी पलकें खोलीं (अर्थात् जब सबेरा हुआ, प्रथम सृष्टि हुई) तभी मैंने दुःख के जल में सुख रूपी मिश्री घोल दी (तभी से विरह-दुःख की अनुभूति हुई); हे देव! अभी आप रुकें, क्योंकि मेरे ये आँसू अभी खारे हैं (इनमें दुःख की छाया है), आप इन्हें मधुर होने दें। मेरा इतिहास चमकते तारे हैं; जिस प्रकार तारों की छाया (झलक) से ही रात उजियाला देती है और उनकी आभा को छूकर मिट्टी के कण भी कलियों की माला के समान शोभा देते हैं उसी प्रकार मेरे चेतन की झलक से जड़ विश्व प्रकाशित है और इसी के स्पर्श से मिट्टी का शरीर भी छविमान है।

(विरह की) मिलन आकुलता स्वयं आज तन्मय राधा (विरहिणी) के रूप में साकार हो उठी है; विरह ही आराध्य हो गया अतः अब द्वैत भाव (आराध्य और आराधक का भाव) नहीं रह गया, अब कोई बाधा भी न रही क्योंकि आराधक ही आराध्य हो गया। अपने को उस प्रिय में खो देना ही उसको पाना हुआ और जीत कर भी वह ब्रह्म हार ही गया (क्योंकि प्रत्यक्ष पकड़ न पाने पर भी अन्त में स्वयं को मिटा कर उसे विरहिणी ने पा लिया)। इस गीत में रहस्यवाद की उस अन्तिम अवस्था की अभिव्यक्ति है जब आत्मा परमात्मा दोनों एक में घुल-खिल जाते हैं!

[५७]

महादेवी कहती हैं कि जिस प्रकार रात के पतले श्वेत अंचल (चाँदनी-भरे आकाश) में मोती (तारे) बिखर कर अन्त में जल (ओस) बनते हैं उसी प्रकार मेरी पलकों में बने स्वप्न अन्त में आँसू ही बन उठते हैं, अतः मैं उतनी ही करुण हूँ जितनी करुण रात है। प्रभात के समान मैं मधुर भी हूँ। प्रभात तिमिर-विष को पीकर मधुपूर्ण राग (अरुणाभा) भर

देता है, मैं भी अपने खारे दुःख के आँसुओं को पीकर, प्रेम-रस बाँटती हूँ। बरसात की भाँति मैं सजल (करुणाभरी) हूँ। जैसे बरसात के समय ताप से दुखी विश्व के हृदय (आकाश) पर तूल से (पानी भरे) बादल छा जाते हैं इसी प्रकार दुःख में तपे मेरे कोमल हृदय में अश्रुपूर्ण करुणा भरी है।

[५८]

महादेवी की अरमान है कि वह प्रिय इनका सजल (प्रेमपूर्ण, अश्रुमय) तथा करुण मुख देख लेता। उस प्रिय से ये कहती हैं कि आपने विरह रूपी समुद्र को शूल (दुःख) रूपी सेतु से बाँधा है (विरह को पार करने के लिए दुःखों पर ही चलना होता है)। फूल सी कोमल पलकों की प्यालियों में आपने विष (अपार वेदना) भर दी है, आपने दुःख में सुख और सुख में दुःख भर दिया है। अतः यदि आप सबसे पूछ पूछ कर यह ज्वाल (वेदना) और जल (आँसू) का देश (संसार) देते, तो, कदाचित्, कोई न लेता।

मैंने नेत्र रूपी नीलम-तुला पर मोतियों (आँसुओं) से प्यार तोला (रो रो कर गहरा प्यार किया); मेरा यह भोला प्राण मृत्यु से व्यापार कर रहा है (मरने पर तुला है); यह मोह भरा कण (शरीर) और (विरह के) थके क्षण मुझे वरदान ही होते यदि आप मुझसे जीवन के प्रति बची खुची ममता भी ले लेते।

तुम्हें पकड़ने के लिए, मेरे पैर, जीवन, पलकें और स्पन्दन बराबर चल रहे हैं किन्तु तुम भी क्षितिज सा धूमिल होकर दूर चलते जा रहे हो। आज मेरे अंग अलसाये हैं और प्राण भी जड़वत् हो चला है। मैं इसे भी जीत मानती यदि आपही हँस कर मुझे अनेकों बार हराते या जो आप हँस कर मुझे हार (पराजय) देते हैं उसे मैं जीत मानती हूँ।

हे देव, इन आँसुओं में न जाने कौनसी मदिरा भर गई है कि इसी को पीकर यह विश्व झूम रहा है और नक्षत्र घूम रहे हैं। मेरी इच्छा है कि आप घना अन्धकार बन कर आवें और मेरा सुरंग अवगुण्ठन (प्रेम-

पर्दा) उठा कर मेरे आँसुओं को गिन लें। शिथिल चरणों के नूपुरों की करुण रुनझुन (थके हृदय की करुण रागिनी) को, जो विरह का इतिहास कह रही है, यदि, आप सुन लेते, तो अवश्य निश्चल हृदय से शीघ्र मेरे पास आ जाते और मुक्ति एवं निर्वाण को भूल कर मुझे मिटा कर, अपने में समा लेते।

[५६]

महादेवी का कहना है कि विरह की घड़ियाँ मुझे बसन्त-रजनी सी मधुर हो गई हैं; आज दूर के नक्षत्र अपने अधिक निकट दिखलाई देते हैं और शून्य तथा मौन आकाश में (प्रिय का) आह्वान सुनाई देता है। आज (कदाचित् विस्मृति में) लघु प्राण निःसीम बन उठा है। मेरा स्पन्दन इतना व्यापक हो गया है कि उसमें युग युग की कहानी भरी है। (प्रिय) की मुस्कान से मेरे आँसू मधुर बन गए हैं। मेरे प्रति मौन विश्वास में नवीन स्वप्न बनते हैं। 'कल' तक की विफलता 'आज' की सफलता में छिप गई है क्योंकि (विस्मृति के कारण) मेरे मिलन और विरह एक हो गए हैं। निराश पुजारिन सी स्मृति मेरी राह देख रही है (मुझे जग की स्मृति न रही), मैं मिट कर निःसीम हो चली; सन्ध्या राग मेरे ही प्रेम-भरे भाव हैं और रात के तारे मेरे प्रेम-भरे रोमांच हैं। मैं बन्दिनी होकर भी मुक्त हूँ (विस्मृति में बन्धन का प्रभाव नहीं रहता)

[६०]

शलभ=पतिंगा, विश्व; दीप=प्राण;

कवयित्री कहती हैं कि हे शलभ (विश्व), मैं एक ऐसा वरदान हूँ जो (बन्धन के कारण) शापमय है [देखिए:-शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में]; मैं किसी निष्ठुर का दीप हूँ या मैं किसी का (शलभ को जलाने के कारण) निष्ठुर दीपक हूँ। जलती शिखा (वेदना) मेरा ताज है, चिनगारियाँ (टीसों) से मेरा शृंगार है, ज्वाला (दुःख) अक्षय कोष है और अंगारों में मेरा क्रीड़ा-स्थल है।

प्रतिक्षण नाश होने पर भी (जलाने वाले की) साक्ष्यस्वरूप जीवित हूँ। शलभ (विश्व), यदि तुझे अपने नेत्रों में मैं रखूँ तो मेरी जलती पुतलियों में तू नष्ट हो जायेगा और प्राण में तो कठिन अग्नि के कारण तुम रह नहीं सकते; अतः मैं तुम्हें कहाँ रखूँ, मैं तो तेरे लिए मृत्यु-मन्दिर हूँ (महादेवी के हृदय में विश्व की ममता को स्थान नहीं है)। मेरे नेत्रों से (आँसू रूप में) अग्निकण निकल कर शीतल हो रहे हैं; मेरे पिघले हृदय के निश्वास ही श्यामल धूम्र हैं; बिना ज्वाला के मैं राख का ढेर ही हूँ [दीपक का जीवन जलने में ही है, उसी प्रकार प्राण भी जलने में ही जीवित है।]

इस प्राण-दीपक को स्वप्न में (जलने की पूर्व स्थिति में, आत्मा की असीमावस्था में) जलाने कौन आया था' यह अज्ञात है किन्तु उस (जलाने वाले, ब्रह्म) की स्मृति में, अब, मुझे कई युग बिताने हैं। जिस प्रकार रात के अन्धकार में दिन के प्रकाश की इच्छा ही दीपक में साकार होती है, उसी प्रकार अन्धकारपूर्ण (मोह-ग्रस्त) जीवन में ज्योतिर्मय (ब्रह्म) हो जाने की इच्छा ही प्राण के जलने में साकार है अर्थात् इस तममय जीवन में प्राण ब्रह्म में मिल जाने की इच्छा से ही जलता है।

शून्य (रात के अन्धकार, असीमावस्था) में प्राण दीपक का जन्म हुआ है और उसका अन्त है सवेरा (मिलन); इस मिलन-आकुल प्राण-दीपक के लिए एक मात्र साथी है अँधेरा (विरही जीवन)। प्राण-दीपक, तू मिलन का नाम न ले क्योंकि तू विरह में चिर है और मिलन में तेरा अन्त है।

[६१]

मानव जीवन नीर (अश्रु) भरी दुःख की बदली है । जैसे आकाश की निस्पंदता में सस्पंद बदली आती है और विश्व को अपने क्रन्दन (गर्जन) और बिजली की चमक में, मानो रुला-हँसा जाती है अथवा दुखी

विश्व को हँसा जाती है। उसी प्रकार अपनी स्पंदता में (चेतन की) चिर निस्पंदता छिपाये यह मानव जीवन विश्व को रुला-हँसा जाता है। बदली की भाँति ही इस दुःख भरे जीवन में दीपक (जलन, कसक) और निर्झरिणी (दुःख के आँसू) हैं। इसमें संगीत (प्रेम) और स्वप्नों की सृष्टि है। आकाश (ब्रह्म) के नवीन रंगों से यह रंगीन है। इसमें मलय-बयार (सुख, मधुर भावों) की भी स्थिति है।

क्षितिज (ब्रह्म) की भ्रुकुटि पर चिन्ता-भार सी दुःखमय जीवन की बदली छा जाती है और जल-कण (अश्रु) बन कर रज-कणों (पार्थिव रूपों) पर बरस कर नव-जीवन रूपी अंकुर बन कर निकलती है। आते समय पथ को यह मलिन नहीं करती और जाते समय पदचिन्ह नहीं छोड़ जाती। इस दुःख की बदली (जीवन सृष्टि) के आगमन की सुधि से सुख की सिहरन और (उसके आने पर) अन्त में पूर्ण प्रफुल्लता आ जाती है।

यह दुःख की बदली, यद्यपि नभ (ब्रह्म) के अंक में ही घूमती है, किन्तु उसका एक कोना भी (अंश भी) इसका नहीं हो पाता; इसका परिचय और इतिहास बस इतना ही है कि यह कल उमड़ी थी और आज मिट चली।

[६२]

अपने विरह-थके प्राण स महादेवी कहती हैं कि अब तक तू विरह में सजग था किन्तु आज यह नींद कैसी? जगो, तुम्हें अभी दूर जाना है। चाहे अचल हिमालय काँपे, आकाश प्रलय की बर्षा करे, घोर तिमिर प्रकाश को निगल जाय, बिजली की चमक तथा बादलों के गर्जन के साथ तूफान आये; (भयंकर अन्तराय आयें) किन्तु तुम्हें इस नाश के पथ पर से आगे जाना है। क्या तुम्हें ये मोम के ढीले बन्धन (सांसारिक विघ्न) बाँध लेंगे? क्या तितलियों के पर (क्षणिक, कोमल, सौंदर्य) तेरे पथ में रुकावट डाल सकते हैं? जैसे भौंरे की मधुर गुनगुन विश्व के क्रन्दन

को भुला देगी, उसी प्रकार तुझे भी अपने प्रेम पथ से विश्व-क्रन्दन हटा न पायेगा। क्या फूल के ओस से आर्द्र दल (सांसारिक प्रेमाश्रु) तुम्हें डुबा सकेंगे। हे प्राण, तू अपनी छाँह (शरीर, जड़ जगत) को अपनी कारा न बना। विरह की असीम वेदना झेलने वाले अपने वज्र से हृदय को तूने वेदना के थोड़े आँसुओं में गलाया (हृदय को थका डाला)। जीवन का अमृत देकर यह नींद वाली मदिरा कहाँ से लाया। क्या मलय की वात (प्रेम के कोमल भाव) का सहारा लेकर (विरह की) आँधी लो चली? क्या आज विश्व का अभिशाप ही तेरे लिए लिए चिर नींद बन कर आया? तू अमर है, अतः मृत्यु को अपने हृदय में क्यों स्थान दे रहा है। तू अपनी उस विरह की जलती कहानी को दुःख की साँसों में भूल कर न कह (अर्थात् अपने विरह-दग्ध जीवन पर दुःख प्रकट न कर) क्योंकि हृदय में आग (ज्वाला) के होने पर ही नेत्रों में पानी (आँसू) शोभा देंगे। तुम्हारी हार भी तेरी जय होगी; पतंग की क्षणिक राख उसके जल कर दीपकमय होने का अमर संकेत करती है।

हे प्राण, तुझे अंगार शय्या (वेदना) पर मृदुल कलियाँ (प्रेम-भाव) पालना है अर्थात् तुम्हें जल जल कर प्रेम करना है।

[६३]

महादेवी कहती हैं कि हे प्रिय! अब प्राण-कीर को इस शरीर पिंजर से मुक्ति दे दो, क्योंकि इसके पवित्र चंचु (ज्योति) को छूकर इस शरीर-पिंजर की तीलियाँ (अवयवों) से वेणु सी दिव्य रागिनी निकल रही है। यह जड़ मौन पिंजर आज अपने भीतर गतिवती (प्रेम की) वेदना छिपाये सिहर रहा है। आप इसकी जड़ता में बोल दें (अर्थात् मेरा रोम रोम ब्रह्ममय हो जाय)।

(प्रेम की) अश्रु-धारा के स्पर्श से इस प्राण-कीर, जो अब तक पर-हीन (निरुपाय) सा रहा, का सम्पूर्ण विभव जग चुका है। अब यह युगों

का बन्दी इस शिथिल कारा (शरीर) को लेकर उड़ चलेगा; इसके (दिव्य) पंखों पर प्रेम-भरे स्वप्नों को रख दो (इसके प्रेम-भरे स्वप्नों को पूर्ण कर दीजिये)। विरह के पथ का अन्धकार और दिशा इसके लिए नगण्य हैं क्योंकि दूरी रूपी पक्षी नैकट्य में चिरकाल के लिए बद्ध है (मेरे और आपके बीच की दूरी प्रायः समाप्त है); अतः आप अब प्रलय-घन में राका भर दें, अर्थात् आप मुझे अपने में मिटा कर शून्य में भर दें।

मेरा शरीर पारे सा चंचल और पानी-भरे बादल सा करुणा-भरा मन है। यदि यह मेरा शरीर बन्धनों (बेड़ियों) का माप बन कर (बन्धनों को गिन गिन कर) इस नीलाकाश (शून्य) को नाप ले तो आप अपने अनन्त दिन (अनन्त ज्योति) की एक किरण इसकी कीमत दे दीजियेगा अर्थात् इसे चिर प्रकाशित कीजियेगा।

[६४]

महादेवी कहती हैं मेरा प्रिय (ब्रह्म) चिरन्तन है और मैं क्षण क्षण बदलती हुई नवीन सुहागिनी हूँ। मैं वह चपल बिजली हूँ जिसे अपने श्वास में छिपा कर बादल सा वह असीम प्रिय आकाश (शून्य) में छा गया। मैं उसकी सजीली (प्रेम भरी) इच्छा से उसमें छिप न सकी वरन् बुझ बुझ कर जलती रही। मैं वह रात्रि हूँ जो, उस ज्योतिर्मय प्रिय की छाँह को ओढ़ कर और अपने समय को धूल में (व्यर्थ में) अश्रु (ओस) गिराने में बिता कर (विरह में रो रो कर) प्रात (मिलन समय में) हँस कर छिप गई क्योंकि यदि मैं मिलन के समय अपने मुख से यह (विरह का) करुण आवरण हटा दूँ, तो मैं उस प्रिय में उसी प्रकार मिट जाऊँगी जैसे पानी में बालू। मैं अपने मधुर व्यक्तित्व को देकर उसमें कैसे मिलूँ, उस विराट की प्रिया होने का मुझे अभिमान है। मेरी इच्छा है कि मैं दीप सी युग युग जलूँ किन्तु वह प्रिय इतना वर दे कि जब मैं उसकी फूँक (इच्छा) से बुझूँ तो भी राख में मेरा पता रहे। वे मेरे

आराध्य रहें और मैं उनकी प्रेमिका। मेरी प्रेम भरी सीमित आँखों में असीम का अमिट चित्र है और मेरे ससीम हृदय में (ब्रह्म को पाने की) अनन्त अभिलाषा है। रजकणों (पार्थिव रूपों) में क्रीड़ा करती हुई मैं उसी पवित्र विधु (ब्रह्म) की चाँदनी हूँ।

[६५]

महादेवी कहती हैं कि मैं अमर प्रिय की अनन्त अनुराग-भरी अमर सुहागिनी हूँ। मै किसे छोड़ और किसे लूँ क्योंकि अमृत और विष मुझे एकसे है। काँटे, कलियाँ और प्रस्तर (कठिनाइयाँ) सभी मुझे मधुर हैं। मेरे प्रति रोम में प्रेम की पुलकें हैं। अतः मेरे लिए जग का अभिशाप कहाँ। जो विघ्न-बाधाओं से डरे वह कहीं एकान्त में (संसार के कोलाहल से दूर) जाये, मैं तो सुख-दुःख, जो प्रिय के दूत से हैं, को गले से लगाऊँगी। मुझे कण-कण से ममता है। बाह्य विश्व में मेरी छाया है; जब मैं इस रिक्त जीवन रूपी घड़े को मरु (जड़ विश्व) में दुःख से भरने आती हूँ (यहाँ सृष्टि की ओर संकेत है। विराट-आत्मा से ही यह संसार है और हमारी आत्मा ही वह विराट है अतः यह भी विश्वमय है।) उषा मेरी माँग में सिन्दूर भरती है, सन्ध्या मेरे पैर में महावर लगाती है; रात की दीपवली (तारकावली) से मेरा आलेपन होता है और संसार के रोगों (दिन के परिश्रम को धोकर) विश्राम देकर मेरी छाया ही रात होती है; नभ-गंगा मानो विश्व-पथ में मेरे पैर रखने के कारण उड़ी धूल से बनी है; मेरे श्वासों से बदली होती है और मेरी दृष्टिमात्र से पतझर (जड़-जगत) हरा (सजीव) हो जाता है।

[६६]

महादेवी का कहना है कि सारा विश्व सो रहा है (विश्व के प्रति ममता समाप्त है) किन्तु वह प्रिय मेरे नेत्रों में जाग रहा है (प्रिय का प्यार जग रहा है)। नियति ने, कुशल चित्रकार के समान, मेरे जीवन रूपी पात्र को सुख-दुःख के रंगों से रँग दिया है; इसमें प्रेम का अमृत भर कर, वह

खारे आँसू माँगती है अर्थात् जीवन में प्रेम भर कर रोने को कहती है।

विरह का समय धूपछाँही (सुख-दुःख मय) है; जिसे मैं खोज रही हूँ वह विश्व के कोलाहल में छिपा है (वह विश्व में व्याप्त है); उसकी छाया को नेत्र और पदध्वनि को हृदय जानते हैं।

हे देव, यद्यपि यह (मेरे और तुम्हारे बीच) की दूरी (द्वैतभाव) रंगमयी (आनन्द-भरी) है और तुम्हें छू लेने पर यह (प्रेमी और प्रेमिका की) क्रीड़ा अधूरी ही रह जायगी; किन्तु अब दूर रह कर खेलने को जी नहीं कहता है।

मैं जानती हूँ कि कपूर की भाँति तुम्हारे सुनहले हास (ज्योति) को छूकर मेरा अस्तित्व उड़ जायगा क्योंकि फिर मेरी अलग सत्ता न रहेगी। इसीलिए जब कभी मेरा मन तुमसे मिलने के लिए व्याकुल होता है तब म पलकों को बन्द कर (विरहान्धकार) बना लेती हूँ।

बादल से भरा गोला आँगन आकाश, टूटता-सा चन्द्रमा रूपी कन्दुक और झुलस कर लाल-पीला होने वाला सूर्य आदि तेरे खिलौने, जिसे तुमने अपनी क्रीड़ा के लिए बना रखा है, और यह मेरा हृदय एक सा नहीं है; अब मेरा हृदय इन सबसे असमान है। मुझे अब इनके साथ खेलने में रुचि न रही।

[६७]

प्रस्तुत गीत हिमालय का एक चित्र खींचता है जिसमें ब्रह्म का चित्र भी दिखलाई देता है। अन्त में उसी हिमालय की सी साधकता, करुणा आदि गुणों की प्राप्ति महादेवी भी चाहती हैं।

महादेवी, प्रत्यक्षतः हिमालय से कहती ह कि हे चिर महान, तुम्हारे (बर्फ से) श्वेत मस्तक को छूकर प्रभात की सुनहली किरणें मुस्करा जाती हैं, इन्द्रधनु तुम्हारा रंगीन चद्दर बनता है और पवन तुम्हें सुरभित कर जाता है पर हिमनिधान, तू रागहीन (अनासक्त) ही रहते हो। तू

नभ में गर्व से खड़े हो, तुम्हारा सर झुकता नहीं; किन्तु अपने अंक में जली वनस्पतियों की राख लिए हो। विश्व को नत (दुःखी) देख कर तुम्हारा मन (बर्फ के रूप में) गल जाता है और शरीर वज्र को भी सह लेता है। तू कोमल और कठिन दोनों हो। सैकड़ों झंझाओं से भी तुम्हारी समाधि टूट न सकी (तुम स्थिर ही रहे) किन्तु दग्ध-दुखी की पुकार के कारण तेरे नेत्रों से (नदियों के मिस) आँसू बह चलते हैं। तुम सुख से उदासीन और दुःख में स्थिर, प्रकृतस्थ हो। तेरी छाया (तेरा प्रभाव) मुझ पर चुपचाप पड़े। मेरे शरीर में तुम्हारी सी साधना और मन में करुणा भर जाये। और जिस प्रकार तुम्हारे हृदय में पावस (वर्षा) और आँखों में प्रभात है (हिमालय की चोटी पर सदा सूर्य का प्रकाश रहता है और वर्षा उसके कुछ अंश के नीचे होती है क्योंकि बादल हिमालय की चोटी के बहुत नीचे नीचे ही घूमता है); उसी प्रकार मेरे हृदय में करुणा और आँखों में (प्रेम भरा) हास हो।

[६८]

गीत का अर्थ सरल है। कुछ कठिन अर्थ दे रहा हूँ।

निर्भर=पूर्ण; सजीला=प्रेमभरा; तीखा=कटु;

[६९]

महादेवी कहती हैं कि मैंने विश्व के कण-कण और उसके क्रन्दन को जान लिया। मैंने रस-विष (सुख-दुःख) के आँसुओं को समझ लिया, कुछ आँसू नेत्रों में हीरक-जल से लगते हैं (सुख के आँसू से अभिप्राय है); इन रंगीन आँसुओं से नेत्रों में इन्द्रधनु (उल्लास) दिखाई देता है। और, कुछ आँसू (दुःखाश्रु) विफल सपनों की टूटी माला से वेदनापूर्ण होठों पर झरते रहते हैं। मैंने (उल्लास-भरे) आकाश के मोती के आँसुओं, जिससे मेघ भरा है, और उसके अवसाद-भरे आँसुओं, जो तारों से गिर कर तृणों में आते हैं, को जान लिया है। मैंने रज (विषाद) के आँसू को भी जान लिया है। मैंने दुःख को सुख बना लिया।

मैंने उपवन (सुख-भरे जीवन) के पथ के प्रति कण्टक (दुःख), जिसके मीठे (क्योंकि यह दुःख का कण्टक चुभ कर सुख-फूल देता है) और तीखे दंशन से शरीर (सुख से) सिहर उठता है और जो फूल (सुख) के रोमांच के समान मधुर लगता है; तथा निर्जन (सुख-हीन जीवन) के पथ के प्रति कण्टक (दुःख), जो पैर में (हृदय में) चुभ कर मन को चिर दुखी बना जाता है और जो अपने एकाकीपन (सुखहीन अवस्था) के कारण पैना है, के माधुर्य को जान लिया। मैंने जीवन को चिर गति का वरदान दे दिया।

जो जल में पड़ने पर भी विजली-सी प्यास भरे रहता है (अर्थात् जो निरन्तर अतृप्त है), जो गर्मी (दुःख) में जल जल कर निखरता है और जो आँसू से धुल कर उजला (पवित्र) होता रहता है, उस मरु (दुःखी जीवन) के (कसक-भरे) अणु अणु का कम्पन; तथा जो गिरे हुए फूलों (दुखी प्राण) पर चन्दन-सी शीतल ममता भर देता है और जो निष्ठुर चरणों से कुचला जाता है, उस उर्वर (भावुक जीवन) के कसक-भरे अणु अणु का कम्पन मैंने जान लिया। मेरा प्रति क्षण संगीत-भरा है।

नभ (ब्रह्म) मेरा स्वर्ण-रजत का (सोने-चाँदी का, चमकता) स्वप्न है (मेरे सपने ब्रह्म के बारे में हैं) और संसार चिर परिचित साथी है; शूल (दुःख) और फूल (सुख) से भरा मेरा चिर नूतन पथ मेरी अभिलाषाओं से बना है। मेरे आँसुओं से आर्द्र यह रज (छोटा नम्र जीवन) दिव (स्वर्ग) से गर्वीली है। मैं सुख से उदासीन और दुःख से भरी हूँ। मैंने क्षण-क्षण का जीवन जान लिया। मिटने को मैंने निर्माण मान लिया (देखिए :-गला कर मृत्पिण्डों में प्राण, बीज करता असंख्य निर्माण)।

[७०]

महादेवी कहती हैं कि मेरा मोम सा शरीर (विरहाग्नि में) घुल चुका और मन दीप सा जल चुका है। विरह के सुख-दुःख भरे रंगीन क्षणों,

आँसुओं और वरुनियों में उलझे और बिखरे स्वप्न रूपी फूलों को लेकर मेरा निश्वास रूपी थका दूत प्रिय को खोजने निकल चुका है। चंचल पलकें आज निर्निमेष हैं; युग और पल सभी अन्धकारपूर्ण हैं और मेरा स्पन्दन भी पराया सा लग रहा है (हृदय निस्पंद है)। वेदना में चेतना लुप्त हो चली है।

तारे रूपी फूलों के और किरणों रूपी चमकते पल्लवों के झर जाने के बाद, आलोक और तम की सन्धि (उषा-काल) में किसी अपरिचित वसन्त रूपी दिवस के आने का आभास आकाश को होता है; उसी प्रकार मेरे जीवन के पतझार में, मिलन और विरह की सन्धि में, छिपे प्रिय के आगमन का भान मेरे हृदय को हो रहा है।

जिस (प्रिय) ने प्राण रूपी दीपक को जला कर उसे तम (अन्धकार-भरे जीवन) में आगे बढ़ने को कहा; वही, अब, निशा (तमपूर्ण जीवन) को प्रकाशित करने वाले उस प्राण-दीपक को परिश्रम के कारण धूमिल (थका) देख कर उससे कह रहा है कि अब तेरा अन्तिम समय (मिलन-क्षण) निकट आ रहा है; तू सो जा।

रात्रि (विरह) अन्तहीन सी है; पास में अंगार (वेदना) की नाव है; विरह-अन्धकार रूपी नदी क्षितिज (मिलन) रूपी किनारे को डुबा चुकी है (विरहान्धकार अनन्त सा हो चला है) और मेरे थके हाथों से (प्रिय की) सुधि रूपी पतवार भी (विस्मृति के कारण) गिर चुकी है। हे प्रिय ! कहो अब तुम्हारा क्या सन्देश है। क्या अभी और भी ज्वाला शेष है। क्या इस विरह के अग्नि (वेदना)-पथ के पार चन्दन और चाँदनी (शीतलता) का देश है। तुम्हारे एक इशारे के लिए मेरा प्राण

[७१]

[रहस्यवाद की अन्तिम अवस्था में आत्मा को 'ब्रह्ममय होने की अनुभूति' प्राप्त होती है; उस समय यह सम्पूर्ण विश्व उसी से उद्‍भूत

और उसी में स्फुरित ज्ञात होता है। अतः इस स्थिति को प्राप्त होकर, जब, कोई रहस्यवादी कवि अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करता है, तब हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। प्रस्तुत गीत में इसी स्थिति की अनुभूतियाँ व्यंजित हैं:]

पथ......उफान बन गया=महादेवी कहती हैं कि मेरा (मिटने का) पथ निर्वाण बन गया, मेरे प्रति पग (एक मिटने) में (निर्वाण के) सैकड़ों वरदान हैं। मेरे थके चरणों (मिटने वाले प्राण) ने सूने तम (तिमिराच्छन्न जीवन) में विद्युत-लोक (प्रकाश) भर दिया है, अथवा, सून तम में बिजली का प्रकाश मानो मेरे प्राण का ही प्रकाश है; मेरी धूमिल छाया (चेतन की झलक जो जड़ पर पड़ने के कारण धूमिल हो जाती है) अब चाँदनी सी निखर उठी है, अथवा, मेरा धूमिल प्रतिबिम्ब ही चाँदनी रात है। प्रलय-मेघ भी मेरे गले में मोतियों का (हिमतरल उफान) श्वेत हार सा लग रहा है।

मरकत वीणा=आकाश; घनसार=कपूर; मधुपर्क=मधु (सुख); शूलों... समान बन गया=दुःख सुख सा मधुर हो गया।

मिट मिट......रेखा=प्रति श्वास में सैकड़ों मिलन-विरह की कथा है; निमिष निज को खोकर (निर्निमेष नेत्र) अलख का रूप आँक रहे हैं।

देते......बन गया=महादेवी कहती हैं कि हे प्रिय, तुम मेरे हास में अपने करुणाश्रु और मेरे आँसुओं में अपना रंगीन हास भर दे रहे हो (ब्रह्ममय होने की अनुभूति से महादेवी के हास-अश्रु भी ब्रह्म के अश्रु-हास में घुल चुके हैं)। आज मेरा प्राण तुम्हें छूकर मरण का दूत (प्रतिनिधि) बन चुका है (प्राण मिट कर मरण का प्रतीक बन उठा है)।

[७२]

कवयित्री कहती हैं कि शूल (दुःख) मेरे लिए पूजा के अक्षत और धूलि (वेदना) चन्दन है। (प्रिय की) सुधि रूपी गन्ध से सुरभित साँस

अगरु धूप है; मेरा स्थिर स्नेह मानो आरती की लौ है; अश्रु अभिषेक के जल-कण हैं; सुख-दुःख के, प्रेम-भरे, अश्रु रूपी मकरन्दों से पूर्ण मेरे बिखरते स्वप्न मानो पूजा के फूल हैं। अज्ञात हृदय वाले, किन्तु, सृष्टि और लय के लिए चिर परिचित रात और दिन के (काले और श्वेत) गन्धर्व सजग पुजारी हैं। रंगीन आकाश रूपी असीम मन्दिर है, पृथ्वी का दुखी और कोमल हृदय चरण-पीठ (पादुका) है और सिन्धु में श्वेत शंख का सा रव हो रहा है। [आत्मा के ब्रह्ममय रूप का वर्णन इन पंक्तियों में है]

(मुझे प्रिय के देश में घुसने से) प्रलय रोक न पायेगा। मैं (आत्मा) स्वयं वरद हूँ, अतः मुझे वरदान कौन देगा। जैसे फूल सुरभि को रोक नहीं सकता है, उसी प्रकार मुझे (आत्मा को) विश्व बाँध नहीं सकता। मैं व्यथा को प्राण में लिए नित सुखी हूँ। मोम सी, ज्वाला (दुःख) में जल कर घुलती हूँ।

सृजन......क्षण-ब्रह्म के जिस श्वास से सृष्टि हुई है वही आत्मा है। ('चुरा लाया जो विश्व-समीर, वही पीड़ा की पहली साँस'), अतः उसे अपने नाश की प्रतीक्षा क्यों, वह तो अमर है।

[७२]

[प्राण एक ऐसा दीपक है जिसे विश्व रूपी पुजारी इष्ट (ब्रह्म) की आराधना के निमित्त जीवन रूपी मन्दिर में आरती के समय (सन्ध्या, सृष्टि के आदि में, जब से प्राण के विरह का आरम्भ होता है) जला देता है। विरह-काल रूपी रात्रि भर वह जलता है और प्रभात (मिलन) उसका अन्त है। इसीलिए महादेवी कहती हैं कि यह प्राण इष्ट के मन्दिर का दीप है, इसे मौन जलने दो।

उस आरती-वेला (सन्ध्या, मानव सृष्टि के आदि) में यह मन्दिर (जीवन) श्वेत शंख-घड़ियाल, स्वर्ण की वंशी-वीणा, के स्वर तथा (आराधना में गाये गए) मधुर गीतों से गूँज उठा (जीवन में विभिन्न प्रकार के

भाव तरंगित हुए), उस समय प्रस्तरों का मन्दिर (जड़ शरीर) भी हँसने लगा, अथवा ओले (दुःख) भी पड़े। साथ ही (विरह का) अन्धकार बढ आया जिसमें (जीवन-मन्दिर की) हलचल समाप्त हो गई और अब इसमें केवल इष्ट (ब्रह्म) ही रह गया है; अतः इस प्राण दीपक को अजिर (जीवन-मन्दिर) के सूनेपन को दूर करने के लिए जलना चाहिए।

पुजारियों के चरणों से अंकित अलिन्द (बरामदे) की पवित्र भूमि, चन्दन का चौखट जिस पर (इष्ट को) प्रणाम करने वालों ने मत्था टेका था, फूल, अक्षत, नैवेद्य, धूप और अर्घ्य आदि सभी उस अन्धकार में लुप्त हो गए [भावार्थ—जीवन के सभी (आराधना के) भाव विरह के अन्धकार में डूब चले] उन सबका इतिहास इसी प्राण-दीपक में ही मुखरित है।

पल के मनके (माला) फेर कर (कुछ देर जग कर) पुजारी रूपी यह विश्व सो गया (जीवन- मन्दिर में विश्व-पुजारी जग नहीं रहा है अर्थात् जीवन में विश्व क प्रति पूर्ण उदासीनता है)। इस जीवन-मन्दिर में पूर्व समय की हलचल की प्रतिध्वनि (पुनरावृत्ति) प्रस्तरों (शरीर की जड़ता अथवा विरह के निष्ठुर अंक) में तिरोहित हो गई। इस प्राण-दीपक का जीवन साँसों की समाधि है [अनुक्षण मिटने वाली साँसों से इसका जीवन निर्मित है, अथवा इसमें प्रतिक्षण मिटने वाली साँसों के अतिरिक्त और कोई व्यापार नहीं है]; और, इसकी यात्रा का पथ अंधकारपूर्ण है (अज्ञात है;) जीवन-मन्दिर का कण-कण, जो कभी पूर्व मुखरित था, अब निस्पन्द है (जीवन में पूर्ण निस्पन्दता है); इस (विरह की) ज्वाला में प्राण का रूप फिर से ढले अर्थात् जल जल कर (विरह के निस्पन्द अंधकार में) प्राण अपना रूप पुनः प्राप्त करे।

झंझा (स्राश्रु हलचल वाला विरह) से दिग्भ्रम हो रहा है और (विरह की) रात भी मूर्च्छा से भरी है (बेसुधता बढ चली है); अब ज्योति की (अन्धकार से) रक्षा करने वाला यह प्राण-दीपक ही उस इष्ट का पुजारी बने। जब तक दिन (मिलन) की हलचल न लौटे (मिलन मे आत्मा परमात्मा में घुल-मिल जाता है, यही मिलन की हलचल है), तब तक यह बराबर जलता ही रहेगा। यह प्राण-दीपक सन्ध्या (विरह की आदिम वेला सृष्टि के आदि) से चला है, इसे प्रभाती (मिलन-क्षण) तक चलना है।

[७४]

पूछता......अवदात=अपने प्राण-दीपक से महादेवी कहती है कि तू इसकी चिन्ता क्यों करता है कि अभी (विरह की) कितनी रात्रि शेष है। तू अमर सम्पुट मे पला है (प्राण का आदि और अन्त अमर ब्रह्म में ही है)। तू (अपने जलाने वाले) जिस (ब्रह्म) की नख-ज्योति को छूकर उसके संकेत पर चिर काल से जल रहा है, जिसकी पवित्र स्मृति लिए तू कज्जल दिशा (तमपूर्ण जीवन) में निरन्तर बढ़ता रहा; उसी ने तुझे चारों ओर से (तेरे रक्षार्थ) घेर रखा है।

झर......बरसात=(विरह रूपी घटा जीवन रूपी आकाश में घिर आई जिसके कारण अब आँसुओं की वर्षा हो रही है)। खद्योत (कोमल अभिलाषायें) झर गए, तिमिर-वात्याचक्र (विरह की हलचल) में अनमोल तारे (प्रेम के मधुर भाव) पिस उठे (विरह-घटा में छिप गए); वज्र के हृदय में विद्युत् शिखा भी जग कर बुझ गई (कठोर विरहान्धकार में स्मृति की ज्योति जग कर छिप जाती है); अब तेरे साथ में अकेली (आँसुओं की) वर्षा है। [अथवा, विरह-घटा के अन्धकार में सब प्रकार के प्रकाश लुप्त हैं; केवल प्राण-दीपक को अपनी ज्वाला से ही उसे प्रकाशित करना है; उसके साथ में केवल आँसुओं की बरसात है]

व्यंगमय .....प्रात=क्षितिज (मिलन) व्यंगमय है (निकट प्रतीत होता हुआ भी वह दूर चलता जाता है, यही उसका व्यंग है); प्रत्येक कण, निष्ठुर सा; तुझसे आज तेरा परिचय और बसेरा (आश्रय) पूछ रहा है। तू अपने ज्वालपूर्ण श्वासों में, मौन, सबका उत्तर दे; जल जल कर जितना ही तू क्षय होगा, उतना ही निकट तुम्हारा प्रभात (मिलन-क्षण) होगा।

भारती=वाणी; लौ=दीपशिखा, लगन;
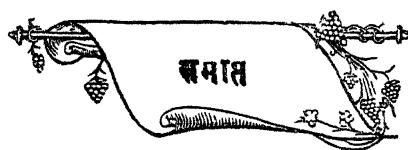
शुद्धि-पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	२३	की	का
६	२४	(पूरी पंक्ति)	मेरी आँखों में वह दुःख
१२	१७	आशा	पहला
१६	३	अपनी	अपनी विभूति
२१	२४	चाहता	चाहती
२६	२१	लिपटा	लिपटी
३६	७	कीसृष्टि	के सृष्टि
३८	८	उच्छ्वास	उसास
३६	५	का	के
४३	१	उसकी	उनकी
४३	११	अपनी	अपने
,,	१७	—	अविराम तुम्हारे
४४	६	टे	टूटे
५८	१६	को ललचाये	को न ललचाये ?
५६	१७	प्राण-दीपक	(प्राण-दीपक)
८५	२१	के	की
८६	७	सिरहते	सिहरते
११३	६	अन्तरम	अन्तरतम
११४	८	रखा	रख सका
११६	११	अविछिन्न॰	अविच्छिन्न
११७	१८	वाले	वाली
११६	१५	यद्यपि	अद्यापि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२२	७	जायसी	जायसी ने
१२३	४	लतिकायें	लतिकाओं
,,	५	मुस्कराता हुआ	मुस्कराते हुए
,,	८	में नहीं	का नहीं
,,	११	जितना	जितनी
१२५	२२	वह	उस
१३२	१	अपने	उसके
१३४	३	दिशा	दिशा एक
१४७	८	आँसुओं का	आँसुओं के
,,	,,	हृदय का	हृदय के
१५६	१५	वाला	वाले
९५	१६	(चन्दन)	(कपूर)
१६७	२२	उसका	उसके
१७७	७	बनना	बनने
१८८	१४	सउके	उसके
१८६	११	दीजियेगा	कर दीजियेगा
,,	२१	में बालू	बालू में
१६०	६	छोड़	छोड़ूँ
,,	१७	रोगों (दिन के परिश्रम को धोकर) विश्राम देकर	रागों (दिन के परिश्रम) को धोकर (विश्राम देकर)
			सैकड़ों बार व्याकुल हो चुका है।